इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

खंड

2

कारक प्रकरण – सिद्धान्तकौमुदी

इकाई 7

कारक प्रकरण – प्रथमा और द्वितीया विभक्ति

इकाई 8

कारक प्रकरण – तृतीया और चतुर्थी विभक्ति

इकाई 9

कारक प्रकरण – पंचमी विभक्ति

इकाई 10

कारक प्रकरण – षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति

खंड 2 का परिचय

प्रिय शिक्षार्थियो, अब आप एम.ए. (संस्कृत) कार्यक्रम के दूसरे पाठ्यक्रम के द्वितीय खंड का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस खंड में सिद्धान्तकौमुदी पर आधारित कारक प्रकरण के अन्तर्गत सु और जस् आदि 21 प्रत्ययों का विधान सात विभक्तियों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। कारक को विभक्त्यर्थ कहा गया है। इस प्रकरण के अध्ययन से आपको संस्कृत भाषा में शुद्ध वाक्य निर्माण में सहायता प्राप्त होगी। कारक के विषय में कहा गया है– करोतीति कारकम अर्थात क्रिया सम्पादन में जो भी करण होते हैं वे कारक है। इस दृष्टि से कारक प्रकरण का विशेष महत्त्व है। यह खंड कुल चार इकाइयों पर आधारित है जिनमें प्रथमा विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति तक के विधायक सूत्रों के साथ–साथ वृत्ति, पदविश्लेषण और विस्तृत व्याख्या, अर्थ, नियम एवं अपवाद आदि का परिचय दिया गया है।

आशा है आप इस खंड के अध्ययन से स्वादि प्रत्ययों के प्रयोग से बनने वाले विभक्ति रूपों और नए पदों की प्रकृति–प्रत्यय और उनके प्रयोग को और स्पष्टतः से जान पाएंगे।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 7 कारक प्रकरण – प्रथमा और द्वितीया विभक्ति

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- प्रथमा विभक्ति के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
- द्वितीया विभक्ति के सम्बन्ध में लगने वाले विभिन्न सूत्रों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रथमा विभक्ति एवं द्वितीया विभक्ति में प्रयुक्त होने वाले सूत्रों के अर्थ, नियम एवं प्रयोग जान सकेंगे; तथा
- नये पदों की प्रकृति एवं प्रत्यय तथा उनसे बनने वाले शब्दों और व्युत्पत्ति को जान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

कारक शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है – करोति इति कारकम्। यहॉ **'डुकृञ्'** करणे धातु से कर्ता अर्थ में "ण्वुल्तृचौ" सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर अकादेश, ऋकार को वृद्धि होकर कारक शब्द निष्पन्न हुआ है। लेकिन कारकप्रकरण का कारक शब्द पारिभाषिक है। करोति क्रियां निवर्तयतीति कारकम्, क्रियान्वयित्वं कारकम्, साक्षात् क्रियाजनकं कारकम् इत्यादि लक्षणों से युक्त है। अर्थात् क्रिया–सम्पादन में जो–जो भी कारण बनते हैं, वे सभी कारक कहलाते हैं। प्रस्तुत इकाई में वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में पठित कर्ताकारक और कर्मकारक से सम्बन्धित सूत्रों का अर्थ, प्रकृति–प्रत्यय का ज्ञान, उदाहरण, वाक्य सिद्धि, निष्कर्ष आदि के बारे में बतलाया गया है। इसका अध्ययन छात्रों के लिए बहुत उपयोगी होगा।

7.2 प्रथमा विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

अजन्तपुँल्लिंग प्रकरण में स्वादि 21 प्रत्ययों का विधान होता है। इन इक्कीस प्रत्ययों को सात विभक्तियों में विभाजित किया गया है। कौन–सी विभक्ति किस अर्थ में होती है; इसका निर्धारण कारक/विभक्त्यर्थ में पठित सूत्रों के द्वारा ही किया जाता है। कारक शब्द का एक अर्थ कर्ता भी है। किन्तु यहॉ पर कारक शब्द पारिभाषिक है। करोति कियां निर्वर्तयतीति कारकम्, अथवा क्रियान्वयित्वं कारकम् अथवा साक्षात् क्रियाजनकं कारकम्। जो क्रिया का निमित्त बने अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय अर्थात् सीधे सम्बन्ध रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं।

ये कारक छः हैं – **कर्ताकारक, कर्मकारक, करणकारक, सम्प्रदानकारक, अपादानकारक और अधिकरणकारक**। सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया हैं, क्योंकि षष्ठी को छोडकर अन्य सभी कारकों का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय है किन्तु सम्बन्ध का सीधे अन्वय न होकर परम्परया अन्वय होता है। जैसे – **रामः पठति** में रामः कर्ता का पठति क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध है और कर्ता और क्रिया एक दूसरे से आकांक्षा युक्त है, अतः सीधे सम्बन्ध रखते हैं। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण प्रथमाविभक्ति युक्त रामः यह कारक हुआ।
वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में कारक प्रकरण के अन्तर्गत प्रथमाविभक्ति से सम्बन्धित सूत्र इस प्रकार हैं –

सूत्र – प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा 2/3/46
वृत्ति – नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राधिक्ये सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्। अलिङ्गा नियतलिङ्गश्च प्रातिपदिकार्थमात्रे इत्यस्योदाहरणम्। अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य। तटः। तटी। तटम्। परिमाणमात्रे द्रोणो ब्रीहिः। द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो ब्रीहिरित्यर्थः। प्रत्ययार्थे परिमाणे प्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम्, प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन ब्रीहौ विशेषणमिति विवेकः। वचनं संख्या। एकः द्वौ बहवः। इहोक्तार्थत्वाविभक्तेरप्राप्तौ वचनम्।
पद–विश्लेषण – पदं पदं प्रतिपदं, प्रतिपदे भवं प्रातिपदिकं प्रातिपदिकस्यार्थः प्रातिपदिकार्थः। प्रातिपदिकार्थं च लिंगं च परिमाणं च वचनं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे सप्तम्यन्तं, प्रथमा प्रथमान्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।
प्रातिपदिकार्थः – नियता उपस्थितिः यस्य स नियतोपस्थितिकः। निपूर्वकयमधातोर्व्यापकत्वमर्थः। आश्रयश्च क्तार्थः। षष्ठ्यर्थश्च विषयता। तथा च व्यापकताश्रयोपस्थिततिविषयत्वं प्रातिपदिकार्थत्वमिति शब्दतो लभ्यते। **मात्राब्दोऽवधारणे**। 'मात्रं कात्स्न्र्येऽवधारणे' इत्यमरः। मात्रशब्दस्य द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात् प्रातिपदिकार्थे, लिंगे, परिमाणे, वचने च प्रत्येकमन्वयः इत्यर्थः।

सूत्रार्थ – प्रातिपदिकार्थ मात्र में, प्रातिपदिकार्थ होते हुये लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र और वचनमात्र की अधिकता में प्रथमा विभक्ति होती है।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः – नियता उपस्थितिर्यस्येति विग्रहः। यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेनोपस्थितिः सः प्रातिपदिकार्थः इति (किसी शब्द के उच्चारण करने पर निश्चितरूप से जिस अर्थ की उपस्थिति हो अर्थात् प्रतीति होती है उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं)। जिस शब्द के उच्चारण करने से यह पता चले कि यह शब्द इस अर्थ का ज्ञान कराता है, अथवा इस शब्द का यह अर्थ है, ऐसी प्रतीति जिस शब्द के विषय में हो जाये, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं।
सूत्र में जो मात्र शब्द उच्चारित है, वह अवधारणार्थक है। मात्र शब्द का प्रत्येक के साथ अन्वय होता है। इस सूत्र से अधोलिखित चार अर्थों में प्रथमाविभक्ति आती है :

1. प्रातिपदिकार्थ मात्र में।
2. प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिंगमात्र की अधिकता रहने पर।
3. प्रातिपदिकार्थ एवं लिंग के अतिरिक्त परिमाणमात्र की अधिकता रहने पर।
4. प्रातिपदिकार्थ, लिंग एवं परिमाण के अतिरिक्त वचनमात्र की अधिकता रहने पर।

इन चारों के साथ में मात्रशब्द का सम्बन्ध है। एक नियम है – ''**द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते**''। विग्रह वाक्य में द्वन्द्वसमास के आदि, मध्य और अन्त में उच्चारित शब्द का सभी शब्दों के साथ प्रयोग किया जाता है। प्रकृत सूत्र में द्वन्द्वसमास करके **प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनानि** बनाया गया है और इसके अन्त में मात्र को जोड़ा जा रहा है। अतः मात्र का योग प्रातिपदिकार्थ के साथ, लिंग के साथ, परिमाण के साथ और वचन के साथ भी होता है। इसलिए इसका उपरोक्त सूत्र का अर्थ – प्रातिपदिकार्थ मात्र में, प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिंगमात्र की अधिकता होने पर, प्रातिपदिकार्थ होते हुए परिमाणमात्र की अधिकता होने पर और प्रातिपदिकार्थ होते हुए संख्यामात्र की अधिकता रहने पर प्रथमा विभक्ति होती है।

शब्दों से विभक्ति का आना आवश्यक है, क्योंकि विभक्ति आने के बाद ''**सुप्तिङन्तं पदम्**'' सूत्र से पदसंज्ञा होती है। पद होने के बाद ही शब्द व्यवहार के योग्य होता है। कहा गया है कि ''**अपदं न प्रयुञ्जीत**'' अर्थात् पद रहित शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे– '**श्री**' शब्द है। जब तक इसमें विभक्ति नहीं लगाते तब तक उसका प्रयोग नहीं हो सकता। व्याकरण को जानने वाले ही विभक्ति से रहित शब्द का अर्थ समझेंगे, किन्तु जो व्याकरण की प्रक्रिया को नहीं समझते, वे विभक्त्यन्त शब्द का ही अर्थ समझ सकते हैं। जैसे – केवल 'भू' धातु का लोक में कोई अर्थ गम्य नहीं है, किन्तु जब लट्, तिप्, शप्, गुण, अवादेश करके 'भवति' बन जाता है तब उसका अर्थ सभी समझते हैं। इसी प्रकार विना विभक्ति के किसी भी शब्द का कोई अर्थ नहीं समझ सकता। अतः पद बने विना उसका प्रयोग नहीं होता। प्रकृ

त सूत्र के द्वारा प्रथमाविभक्ति (सु, औ, जस् प्रत्यय) किस अर्थ में आती है, यह बतलाया गया है। इस सूत्र से प्रथमाविभक्ति के अर्थ का निश्चय किया जाता है।

उदाहरण :–

1. प्रातिपदिकार्थ मात्र।

उच्चैः (ऊँचा)। नीचैः (नीचा)। यहाँ पर उच्चैस् और नीचैस् इन दोनों अव्ययों से प्रातिपदिकार्थ मात्र की उपस्थिति होती है। इसलिए प्रातिपदिकार्थ मात्र में ''**प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**'' सूत्र से प्रथमाविभक्ति का विधान होता है। अतः सु प्रत्यय आता है। उच्चैस् और नीचैस् ये दोनों शब्द अव्ययसंज्ञक होने कारण ''**अव्ययदाप्सुपः**'' से सु विभक्ति का लोप हुआ। उच्चैस् और नीचैस् के सकार को रुत्वविसर्ग होकर उच्चैः और नीचैः शब्द बनता है।

कृष्णः (भगवान् कृष्ण)। कृष्ण शब्द के बहुत से अर्थ हैं, लेकिन यहाँ पर कृष्ण शब्द से वासुदेव का पुत्र कृष्ण ही निश्चित रूप प्रातिपदिकार्थ उपस्थित होता है। अतः प्रातिपदिकार्थ मात्र में ''**प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**'' से प्रथमाविभक्ति हुयी। एकत्व की विवक्षा में ''**द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने**'' से एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप होने पर सकार को रुत्वविसर्ग होकर कृष्णः शब्द निष्पन्न होता है।

श्रीः (लक्ष्मी)। श्री शब्द के उच्चारण से लक्ष्मी यह अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है; अतः प्रातिपदिकार्थ हुआ। अतः प्रातिपदिकार्थ मात्र में ''**प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**'' से प्रथमाविभक्ति हुयी। एकत्व की विवक्षा में ''**द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने**'' से एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप होने पर सकार को रुत्वविसर्ग होकर लक्ष्मीः शब्द निष्पन्न होता है। लक्ष्मी शब्द न तो ङ्यन्त है और न आबन्त। अतः ''**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्**'' सूत्र से सु का लोप नहीं हुआ।

ज्ञानम्(ज्ञान)। ज्ञानशब्द का ज्ञान, विद्या की सम्पन्नता अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। अतः प्रातिपदिकार्थ हुआ। अतः प्रातिपदिकार्थ मात्र में ''**प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**'' से प्रथमाविभक्ति हुयी। एकत्वविवक्षा में सु आया। नुपंसकलिंग होने के कारण सु के स्थान पर ''**अतोऽम्**'' से 'अम्' हुआ और ''**अमि पूर्वः**'' से पूर्वरूप होकर ज्ञानम् शब्द निष्पन्न होता है।

अलिङ्गा नियतलिङ्गाष्च प्रातिपदिकार्थमात्रे इत्यस्योदाहरणम्। जो शब्द लिंगरहित हैं अर्थात् अव्यय और जो शब्द निश्चित लिंग वाले हैं, वे शब्द प्रातिपिदकार्थ मात्र के उदाहरण हैं, जिन्हें ऊपर दिया जा चुका है। वे हैं उच्चैः, नीच्चैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्।

अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य। जिस प्रातिपदिक का निश्चित एक लिंग नहीं है, ऐसे अनियतलिंग शब्द लिंगमात्राधिक्य के उदाहरण होते हैं। वे लिंगमात्राधिक्ये के द्वारा बताये जा रहे हैं –

2. प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिंगमात्र की अधिकता रहने पर।

कोई शब्द केवल अपने लिंग को नहीं कह सकता अपितु लिंगविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ को ही कहता है। जैसे पुरुषशब्द पुँल्लंगयुक्त मनुष्यरूप प्रातिपदिकार्थ को, नारी शब्द स्त्रीलिंगयुक्त

नारी रूप प्रातिपदिकार्थ को तथा पुस्तक शब्द नपुंसकलिंगयुक्त पुस्तक रूप अर्थ को कहते हैं। इनमें निश्चित लिंग के साथ प्रातिपदिकार्थ मात्र की उपस्थिति होती है, किन्तु तट शब्द से बहुत लिंगों की उपस्थिति होती है। तट शब्द का लिंग निश्चित नहीं है; इसलिए लिंगमात्राधिक्ये का उदाहरण है। **तटः, तटी, तटम्**। अकारान्त '**तट**' शब्द से प्रातिपदिकार्थ सहित लिंगमात्र की अधिकता में ''**प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**'' से प्रथमाविभक्ति हुयी। एकत्वविवक्षा में सु आया। विसर्ग होकर तटः बनता है। पुंल्लिङ्ग में रामशब्द की तरह, स्त्रीलिङ्ग में नदीशब्द की तरह और नुपंसकलिङ्ग में ज्ञान शब्द की तरह इसके प्रयोग सिद्ध होते हैं।

3. प्रातिपदिकार्थ एवं लिंग के अतिरिक्त परिमाणमात्र की अधिकता रहने पर।

कहीं पर भी किसी शब्द से केवल परिमाण की अभिव्यक्ति नहीं हुआ करती अपितु प्रातिपदिकार्थ सहित परिमाण की अभिव्यक्ति हुआ करती है। अतः प्रातिपदिकार्थ सहित परिमाणमात्र की अधिकता होने पर प्रथमाविभक्ति हो, इसलिए **परिमाणमात्राधिक्ये** कहा गया। **जैसे – द्रोणो व्रीहिः।** द्रोण प्राचीनकाल का एक नापने वाला (परिमाणवाचक) शब्द है, जैसे आजकल किलो, कुन्टल आदि हैं। द्रोण का अर्थ परिमाण विशेष और इस सूत्र से परिमाणाधिक्य में जो सु प्रत्यय हुआ, उसका परिमाण सामान्य अर्थ है। जैसे एक 'किलो चावल' इस वाक्य में नाप सामान्य परिमाण और एक किलो विशेष परिमाण। अतः एक किलो से नपा हुआ चावल यह तात्पर्य निकलता है। **इसी प्रकार से द्रोण का अर्थ भी परिमाण है और परिमाण अर्थ में हुए सु का अर्थ भी परिमाण ही है।** दो परिमाणों में द्रोण का परिमाण अर्थ विशेषण और 'सु' प्रत्यय का परिमाण अर्थ विशेष्य है। इस तरह से द्रोण के रूप में जो परिमाण, उस परिमाण से नपा हुआ धान यह अर्थ निश्चित हुआ। व्रीहिः में सु विभक्ति प्रातिपदिकार्थमात्र में और द्रोणः में सु विभक्ति प्रातिपदिकार्थमात्र रहते हुए परिमाणमात्र की अधिकता में हुई है, ऐसा समझना चाहिए। यदि यहॉ पर परिमाण अर्थ में विभक्ति न की जाय तो अर्थात् प्रातिपदिकार्थ में ही विभक्ति मानी जाय तो '**द्रोणो व्रीहिः**' में द्रोण किसी वस्तु का मापक परिमाण का व्रीहि धान्यविशेष जो माप्य–नापा जाने वाले के साथ परिच्छेद्य–परिच्छेदक भाव रूप सम्बन्ध नहीं होगा अपितु 'नीलो घटः' की तरह अर्थात् नीलाभिन्नो घटः नील गुण से अभिन्न घट की तरह द्रोण से अभिन्न व्रीहि ऐसे अभेद सम्बन्ध से अन्वय होने लगता, क्योंकि '**नामार्थयोरभेदान्वयः**' एक नामार्थ प्रातिपदिकार्थ का दूसरे नामार्थ के साथ में अभेदान्वय ही होता है, ऐसा नियम है। यह '**द्रोणो व्रीहिः**' में कथमपि सम्भव नहीं है क्योंकि द्रोण नापने वाला मापक है और व्रीहि उससे नापी जाने वाली माप्य वस्तु है। द्रोण परिमाण और व्रीहि द्रव्य कभी भी एक नहीं हो सकते। अतः अभेदान्वय को बाधकर परिच्छेद्य–परिच्छेदकभाव रूप सम्बन्ध से अन्वय करने के लिए परिमाण अर्थ में ''**प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**'' से प्रथमाविभक्ति हुयी। एकत्वविवक्षा में सु आया। विसर्ग होकर द्रोणो व्रीहिः बनता है।

4. प्रातिपदिकार्थ, लिंग एवं परिमाण के अतिरिक्त वचनमात्र की अधिकता रहने पर।

एकः द्वौ बहवः (एक, दो, बहुत)। यहाँ पर एक शब्द से एकत्व संख्या, द्वि शब्द से द्वित्व संख्या और बहु शब्द से बहुत्व संख्या का अर्थ स्वतः उपस्थित है। तात्पर्य यह है कि एक, द्वि, बहु आदि संख्यावाचक शब्दों से संख्या अर्थ जो प्रातिपदिकार्थ है, वह उक्त है और उस उक्त अर्थ को बताने के लिए सु आदि प्रत्यय नहीं किये जा सकते क्योंकि '**उक्तार्थानामप्रयोगः**' के आधार पर अर्थात् **उक्तः** – कहा गया है, **अर्थानाम्** – अर्थ जिन शब्दों का ऐसे शब्दों का **अनुप्रयोगः** – प्रयोग नहीं किया जा सकता। यह नियम है। अतः द्वि आदि से एकत्व, द्वित्व आदि संख्या रूप अर्थ के उक्त होने पर भी वचन ग्रहणसामर्थ्य से '**उक्तार्थानामप्रयोगः**' इस नियम को बाधकर सु आदि प्रत्यय होते हैं। इसलिए प्रकृत सूत्र में '**संख्यामात्रे**' का उच्चारण किया गया है। एक द्वि बहु ये स्वतः संख्यावाचक होते हुए भी इनमें प्रथमाविभक्ति होना चाहिए जिससे ये पद बन सकें। इन तीनों शब्दों से प्रातिपदिकार्थमात्र होते हुए संख्यामात्र की विशेषता में ''**प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**'' से प्रथमाविभक्ति हुई। एक सु में रुत्वविसर्ग करके एकः, द्वि औ में ''**त्यदादीनामः**'' से अत्व द्व औ बना। वृद्धि होकर द्वौ, बहु जस् में ''**जसि च**'' से गुण करके अवादेश, रुत्वविसर्ग करके बहवः सिद्ध हुआ।

सूत्र – सम्बोधने च 2/3/47
वृत्ति – इह प्रथमा स्यात्। हे राम।
पदविश्लेषण – सम्बोधने सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ – सम्बोधन में प्रथमाविभक्ति होती है। दूर से बुलाने को अथवा अपनी ओर अभिमुख करने को सम्बोधन कहते हैं। प्रातिपदिकार्थ से अधिक अर्थ की प्रतीति होने के कारण पृथक् निर्देश किया गया है।

उदाहरण – हे राम! यहॉ पर राम से सम्बोधन अर्थ में ''**सम्बोधने च**'' से प्रथमाविभक्ति होती है। एकत्वविवक्षा में सु प्रत्यय आता है। ''**एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः**'' सूत्र से सु का लोप होकर हे का पूर्वप्रयोग करके '**हे राम**! सिद्ध होता है।

7.3 द्वितीया विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में कारक प्रकरण के अन्तर्गत द्वितीयाविभक्ति से सम्बन्धित सूत्र इस प्रकार हैं –
सूत्र – कारके 1/4/23
वृत्ति – इत्यधिकृत्य।
पदविश्लेषण – कारके इति सप्तम्यन्तमेकपदमधिकारसूत्रम्।
सूत्रार्थ – यह अधिकार सूत्र है। तत्तद् सूत्रों में इसका अधिकार जाता है। सूत्र में 'कारके' यह सप्तमी प्रथमा के अर्थ में है। अतः आगे जो–जो सूत्र कहे जायेंगे, उनमें '**कारके**' इस पद का सम्बन्ध होता है अर्थात् उन–उन सूत्रों में इसका अधिकार होता है। इसका अधिकार

अष्टाध्यायीक्रम से ''**तत्प्रयोजको हेतुष्च**'' (1/4/55) के पहले तक रहता है। इसके फलस्वरूप अपादान आदि संज्ञाविधान करने वाले सूत्रों में कारके का प्रभाव पडने से '**कारकं सत् कर्मसंज्ञकम्**' इत्यादि अर्थ बनते हैं। इसीलिए कर्म, कर्ता, करण आदि कारक कहलाते हैं। कारक का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– '**करोति इति कारकम्**' (करने वाला) यहॉ '**डु कृञ् करणे**' (**कृ**) धातु से कर्ता अर्थ में ''**ण्वुल्तृचौ**'' सूत्र से '**ण्वुल्**' प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर अकादेश और धातु के ऋकार को आर्धधातुक गुण, रपर होकर कारक शब्द बना है। क्या करने वाला है? इस आकांक्षा की पूर्ति के लिये करोति का अर्थ क्रियां निर्वर्तयति (क्रिया को सम्पन्न करता है) यह किया जाता है। अन्यथासिद्ध का तात्पर्य है– जिसके न रहने पर भी क्रिया सम्पन्न हो जाय। इसीलिए '**ब्राह्मणस्य पितरं प्रणमति**' इत्यादि वाक्य में प्रणमन–क्रिया जनकत्व (सम्पादकत्व) ब्राह्मण में न होने से वह कारक नहीं कहलाता। अपादानादि के विशेष होने से कारक यह संज्ञा तथा अधिकार दोनों रूपों में ग्राह्य है।
कारक के दो लक्षण प्रसिद्ध हैं – **प्रथम क्रियां निर्वर्तयति (जनयति) सम्पादयतीति कारकम्** और द्वितीय, क्रियान्वयित्वं कारकम्। प्रथम लक्षण नागेश जी का तथा द्वितीय लक्षण दीक्षित जी का है। दोनों का तात्पर्य एक ही है, फिर भी भाष्य में **करोतीति कारकम्, करोति निर्वर्तनार्थकः** कहे जाने के कारण नागेश जी के लक्षण में समर्थन देते हैं।

सूत्र – कर्तुरीप्सिततमं कर्म 1/4/49
वृत्ति – कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। कर्तुः किम्? माषेष्वश्वं बध्नाति। कर्मणः ईप्सिता माषाः, न तु कर्तुः। तमब्ग्रहणं किम्? पयसा ओदनं भुङ्क्ते। कर्म इत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहणमाधारनिवृत्यर्थम्। अन्यथा गेहं प्रविशतीत्यत्रैव स्यात्।
पदविश्लेषण – अतिशयेन ईप्सितम् ईप्सिततमम्। कर्तुः षष्ठ्यन्तम्, ईप्सिततमं प्रथमान्तं, कर्म प्रथमान्तं त्रिपदात्मकमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ – कर्ता क्रिया के द्वारा अत्यन्त इष्ट अर्थात् जिसे विशेषरूप से प्राप्त करना चाहता है, उस कारक की कर्मसंज्ञा होती है। एक वाक्य में कर्ता, कर्म और क्रिया ये तीन या तीन से अधिक भी होते हैं। इसमें कर्म कौनसा है? यह जानने के लिए इस सूत्र का सहारा लिया जाता है। जैसे '**रामः पुस्तकं पठति**' इस वाक्य में पठति यह क्रिया और रामः यह कर्ता है। राम कर्ता को पठनक्रिया द्वारा अत्यन्त इष्ट है पुस्तक। इसलिए पुस्तक की कर्मसंज्ञा होती है। इसी प्रकार '**देवदत्तः पत्रं लिखति**' में कर्ता देवदत्त को लेखनक्रिया द्वारा अत्यन्त अभीष्ट है पत्र। अतः पत्र की कर्मसंज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल ''**कर्मणि द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति का विधान करना।
ईप्सित शब्द से अतिशयता अर्थ में सन् में तमप् प्रत्यय होकर ईप्सिततम् बना है। इसका अर्थ है – सम्बद्ध होने के लिये अत्यन्त अभीष्ट।

कर्तुः किम्? माषेषु अश्वं बध्नाति। प्रकृतसूत्र में '**कर्तुः**' पद का क्या प्रयोजन है? इस प्रश्न का आशय यह है कि कर्तुः इस पद के अभाव में '**कारके**' के अधिकार के कारण व्यापार–क्रिया अर्थ का लाभ होता ही है। ऐसी अवस्था में कर्तुः पद कहीं व्यर्थ तो नहीं है? इस प्रश्न का

समाधान करते हुये कहते हैं कि बिल्कुल व्यर्थ नहीं है, क्योंकि '**माषेषु अश्वं बध्नाति**' में माष शब्द की कर्मसंज्ञा को रोकने के लिये उक्त पद की नितान्त आवश्यकता होती है। अर्थात् **कर्तुः** पद के बिना कारके का अधिकार होने से व्यापार प्रयोज्य फल का आश्रय है, वह कर्म है ऐसा अर्थ होगा और वह व्यापार कर्ता का हो या कर्म का। इसलिए कर्मनिष्ठव्यापार से प्रयोज्य फलाश्रय की भी कर्मसंज्ञा होने लगेगी। **'रामो माषेषु अश्वं बध्नाति' (राम ऊडद के खेत में घो़ड़े को बॉधता है)**। यहॉ पर कर्तृपद है – रामः, क्रियापद है – बध्नाति, कर्ता को बन्धनक्रिया द्वारा इष्टतम कारक है अश्व। अतः अश्व शब्द की ''**कर्तुरीप्सितमं कर्म**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होकर ''**कर्मणि द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति हो जाती है। यदि प्रकृत सूत्र में कर्तुः पद न दिया जाय तो सूत्र का अर्थ होगा। कर्ता, कर्म, करण आदि किसी भी इष्टतम की कर्मसंज्ञा होती है। ऐसा अर्थ मानने पर अश्व की कर्मसंज्ञा होने में तो कोई आपत्ति नहीं है किन्तु कर्मपद जो अश्व, उसका इष्टतम माष है, उसकी भी कर्मसंज्ञा होने लगेगी। केवल कर्ता के लिये जो इष्टतम है, उसकी कर्मसंज्ञा हो और कर्म आदि के इष्टतम की कर्मसंज्ञा न हो।

कर्मणः ईप्सिता माषा, न तु कर्तुः। अर्थात् कर्म अश्व के लिये माष इष्टतम है किन्तु कर्ता राम के लिये माष बन्धनक्रिया द्वारा इष्टतम नहीं है। इसलिए कर्मसंज्ञा न होकर आधार होने से अधिकरणसंज्ञा होकर सप्तमीविभक्ति होने से '**माषेषु**' बनता है। माष खाने में लिप्त घो़ड़ा अधिक माष भक्षण न करे। इसलिए राम घो़डे को बॉध देता है। अतः माष में कर्मत्व की निवृत्ति के लिये प्रकृतसूत्र में '**कर्तुः**' पद आवश्यक है।

तमब्ग्रहणं किम? पयसा ओदनं भुङ्क्ते। यहॉ पर 'ईप्सिततमम्' शब्द में ''**अतिशायने तमबिष्ठनौ**'' सूत्र से अतिशायन अर्थ में तमप् प्रत्यय हुआ है। तमप् का अर्थ तमबन्त। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि '**कर्तुरुद्देश्यं कर्म**' ऐसा पाठ कर देने पर ही सभी स्थलों पर कर्मसंज्ञा की सिद्धि हो जाती, पुनः ईप्सित यह तमबन्त पद क्यों पढ़ा गया? इसके उत्तर में कहते हैं – '**पयसा ओदनं भुङ्क्ते' (दूध से भात खाता है)**। अर्थात् यदि '**कर्तुरुद्देश्यं कर्म**' सूत्रस्वरूप होता तो उक्त वाक्य में ओदन की तरह ही पयः के भी भोजनक्रिया द्वारा कर्ता का उद्देश्य होने से कर्मसंज्ञा होने लगती, जो कि इष्ट नहीं है। यह वाक्य उस समय के लिये प्रयुक्त है, जब लगभग भोजन कर चुका व्यक्ति दूध मिलने के बाद पुनः और भात ले लेता है। ओदन के निगलने में दूध सहायक है। यदि दूध मात्र इष्टतम होता तो दूध मिलने के बाद और चावल नहीं लेता। इससे सिद्ध होता है कि कर्ता के लिये भले ही दूध इष्ट हो किन्तु ओदन सर्वाधिक इष्ट है। अतः ओदन की कर्म संज्ञा होती है किन्तु ईप्सितों में सर्वाधिक ईप्सित न होने के कारण पयस् की कर्मसंज्ञा नहीं होती। ओदन भोजन में व्यक्ति ओदन के लिये सहायक होने के कारण इसकी करणसंज्ञा होकर तृतीयाविभक्ति हो जाती है – **पयसा ओदनं भुङ्क्ते वाक्य बनता है**।

कर्म इत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहणमाधारनिवृत्त्यर्थम्। प्रकृत सूत्र में अष्टाध्यायीक्रम के पूर्वसूत्र ''**अधिशीङ्स्थासां कर्म**'' से कर्म पद की अनुवृत्ति सुलभ होने पर भी प्रकृत में कर्म के ग्रहण की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न का समाधान मूल में किया गया है – **आधानिवृत्त्यर्थम्**।

अर्थात् प्रकृत सूत्र में पूर्वशास्त्र से कर्म पद की अनुवृत्ति करने पर उसके साथ सम्बद्ध आधार शब्द जो कि ''**आधारोऽधिकरणम्**'' से उक्त सूत्र में अनुवृत्त है, वह आधार शब्द भी कर्म–शब्द के साथ–साथ आने लगेगा। इस तरह आधार पद की निवृत्ति के लिए प्रकृतसूत्र में कर्म पद का पुनः प्रयोग किया गया है।

अन्यथा गेहं प्रविशति इत्यत्रैव स्यात्। अर्थात् यदि प्रकृतसूत्र में कर्म पद का पुनः ग्रहण न करते और पूर्वसूत्र से ही कर्म शब्द की अनुवृत्ति कर लेते तो कर्मशब्द के साथ आधार पद की भी अनुवृत्ति आ जाने से आधारभूत की ही कर्मसंज्ञा होती। ऐसी अवस्था में '**गेहं प्रविशति**' इस वाक्य में गेह की तो कर्मसंज्ञा हो जाती है, क्योंकि यहॉ प्रवेश क्रिया का आधार गेह ही है। यहॉ गेह आधार भी है और कर्ता राम आदि की **प्रवेश–क्रिया के द्वारा सम्बद्धम् इष्टतम् अर्थात् कर्तृनिष्ठव्यापार प्रयोज्य गृहसंयोग रूप फल** का आश्रय भी है। यदि प्रकृतसूत्र में कर्म पद का योग न होता तो यहॉ गेहं प्रविशति जैसे आधारयुक्त इष्टतम की कर्मसंज्ञा तो हो जाती किन्तु '**पयसा ओदनं भुङ्क्ते**' आदि स्थलों पर अनाधार ओदन की कर्मसंज्ञा नहीं हो सकेगी। इसी तरह '**राम ओदनं पचति**' में पाकक्रिया द्वारा कर्ता का ईप्सिततम ओदन है किन्तु वह पचन क्रिया का आधार नहीं है। अतः यहॉ कर्मसंज्ञा नहीं हो सकेगी। इसलिए प्रकृतसूत्र में पुनः कर्म शब्द का ग्रहण करना आवश्यक है।
शास्त्रों में अधिकार या अनुवृत्ति दो तरह से होते हैं – शब्दाधिकार और अर्थाधिकार। शब्दाधिकार में अर्थरहित केवल शब्द अधिकृत या अनुवृत्त होता है, जबकि अर्थाधिकार में अर्थसहित शब्द अधिकृत या अनुवृत्त होता है। प्रकृतसूत्र में भी कर्म पद का अर्थाधिकार मानने पर उक्त शंका–समाधान सही है किन्तु शब्दाधिकार मानने पर पूर्वसूत्र से कर्म की अनुवृत्ति से ही कार्य सि़द्ध हो जाता, इस सूत्र में कर्म–ग्रहण व्यर्थ ही हो जायेगा।

सामान्यतः कर्म दो प्रकार के हैं – ईप्सित और अनीप्सित। उनमें ईप्सित कर्म तीन प्रकार के होते हैं – निर्वर्त्य, विकार्य और प्राप्य।
निर्वत्य कर्म। निर्वर्त्य अर्थात् उत्पाद्य कर्म वहीं होते हैं, जहॉ सर्वथा नवीन वस्तु का निर्माण होता है। जैसे कि 'घटं करोति'। यहॉ अपनी उपस्थिति से पूर्व घट विद्यमान नहीं था। घट का सर्वथा नवीन निर्माण हुआ है। अतः घट निर्वर्त्य सम्पाद्य, उत्पाद्य कर्म है। इसी तरह अन्यत्र भी समझना चाहिये।

विकार्य कर्म। विकार्य कर्म में पूर्व विद्यमान वस्तु का बाद में विकार–परिवर्तन देखा जाता है। जैसे कि 'पयः दधि करोति। यहॉ पयस् पूर्व में विद्यमान है तथा दधि उसका विकार मात्र है, नवीन निर्माण नहीं है। अतः दधि को विकार्य कर्म माना जाता है।

प्राप्य कर्म। जहॉ व्याप्ति और व्यतिरेक के द्वारा क्रियागत विशेषता न हो, उसे प्राप्य कहते हैं। जैसे कि '**ग्रामं गच्छति**'। यहॉ ग्राम न तो सर्वथा नूतन निर्माण है और नहीं पूर्व विद्यमान किसी वस्तु का विकार है। किसी व्यक्ति के ग्राम में पहॅुचने के बाद भी ग्राम में किसी प्रकार

का विकार, उत्पादन क्रियागत विशेषता की प्रतीति नहीं है किन्तु कर्ता ग्राम को पहुॅच गया है, इतना मात्र ज्ञान होता है। अतः यह प्राप्य कर्म माना जाता है। अनीप्सित कर्म द्वेष्य और उपेक्ष्य कर्म के भेद से दो प्रकार का होता है। जिनका ''**तथायुक्तं चानीप्सितम्**'' सूत्र प्रतिपादन किया जायेगा।

सूत्र – अनभिहिते 2/3/1

वृत्ति – इत्यधिकृत्य।

पदविश्लेषण – न अभिहितम् अनभिहितं, तस्मिन् अनभिहिते, नञ्तत्पुरुषसमासः। अनभिहिते इति सप्तम्यन्तमेकपदमधिकारसूत्रम्।

सूत्रार्थ – अनभिहित का अधिकार द्वितीय अध्याय के तृतीयपाद की समाप्ति पर्यन्त है। अभि–पूर्वक धा–धातु से क्त–प्रत्यय करने पर ''**दधातेर्हिः**'' सूत्र से हि आदेश होकर अभिहितम् बनता है। अभिहित का अर्थ है उक्त। न अभिहितम् इति अनभिहितम् अर्थात् अनुक्त। इस प्रकार उक्त और अभिहित, अनुक्त और अनभिहित पर्याय शब्द हैं। अनभिहित का अधिकार कारक विभक्तियों में ही जाता है, उपपद विभक्तियों में नहीं। इसका अधिकार तत्तत् सूत्रों में जाकर अनुक्त कर्म आदि कारकों में ही वक्ष्यमाण विभक्तियों हों, ऐसा अर्थ उपस्थापित करता है। उक्त का सामान्यलक्षण है। **यस्मिन् (अर्थे) प्रत्ययः, स उक्तः** अर्थात् जिस वाक्य की क्रिया में कर्ता, कर्म आदि अर्थ में प्रत्यय होता है, वे कर्ता, कर्म आदि उक्त हो जाते हैं और वाक्य में एक के उक्त हो जाने से अन्य सभी अनुक्त ही रहते हैं।

सूत्र – कर्मणि द्वितीया 2/3/2

वृत्ति – अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मणि प्रातिपदिकार्थमात्रे इति प्रथमैव। अभिधानं च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः। तिङ् – हरिः सेव्यते। कृत् – लक्ष्म्या सेवितः। तद्धितः – शतेन क्रीतः शत्यः। समासः – प्राप्तः आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः। क्वचिन्निपातेनाभिधानम्। यथा – विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेतुमसाम्प्रतम्। साम्प्रतमित्यस्य हि युज्यत इत्यर्थः।

पदविश्लेषण – कर्मणि सप्तम्यन्तं, द्वितीया प्रथमान्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ – अनुक्त कर्म में द्वितीयाविभक्ति होती है। अनुक्त कर्म अर्थात् कर्मरूप अर्थ कृत्, तिङ् आदि के द्वारा न कहा गया हो अर्थात् कर्म अर्थ में कृत् आदि प्रत्यय न हुए हों, उन्हें अनुक्त कहा जाता है। '**यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः**'– जिस अर्थ में प्रत्यय होता है वह उक्त होता है, उससे भिन्न अनुक्त कहलाता है। जैसे– '**रामः पुस्तकं पठति**' इस वाक्य में पठ् धातु से लट् लकार ''**लः कमणि च भावे चाकर्मकेभ्यः**'' के द्वारा कर्ता अर्थ में होता है। इसलिए इस वाक्य का कर्ता उक्त हुआ। एक उक्त होता है तो शेष स्वतः अनुक्त हो जाते हैं। इसलिए इस वाक्य में जो कर्मवाचक शब्द पुस्तक है, वह अनुक्त हुआ। कर्म के अनुक्त होने पर ''**कर्मणि द्वितीया**'' सूत्र के द्वारा द्वितीयाविभक्ति का विधान होकर **पुस्तकम्** बनता है। इसी तरह सभी जगह समझना चाहिए। उक्त और अनुक्त की व्यवस्था को अच्छी प्रकार से समझ लेना चाहिए।

पहले कर्म क्या है? यह जानना और उसके बाद कर्म उक्त है कि अनुक्त यह जानना चाहिए। कर्ता अर्थ में प्रत्यय हुआ है तो कर्ता उक्त तथा कर्म अनुक्त होता है और कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ है तो कर्म उक्त तथा कर्ता अनुक्त होता है। इस सूत्र से अनुक्त कर्म में ही द्वितीया विभक्ति होती है। यदि कर्म ही उक्त हो जाय तो कर्म में द्वितीया विभक्ति नहीं हो पाती। कर्म के उक्त हो जाने के बाद तो प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति ही होती है।

उदाहरण – हरिं भजति (देवदत्त हरि का भजन करता है)। इस वाक्य में '**भज्**' धातु में लट् लकार के बाद '**ति**' कर्ता अर्थ में होता है। अतः कर्ता उक्त है। कर्ता के उक्त होने से कर्म स्वतः अनुक्त हो जायेगा। वाक्य का कर्म क्या है? यह जिज्ञासा उत्पन्न होने पर ''**कर्तुरीप्सिततं कर्म**'' सूत्र से कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने में जो अत्यन्त इष्ट है उसकी कर्मसंज्ञा होती है। यहॉ पर कर्ता '**देवदत्त**' भजनक्रिया के द्वारा हरि को प्राप्त करना चाहता है, इसलिए **हरि** यह कर्म हुआ। कर्म अनुक्त है इसलिए हरि में ''**कर्मणि द्वितीया**'' से द्वितीया विभक्ति हुई। हरि से अम् और ''**अमि पूर्वः**'' से पूर्वरूप होकर '**हरिम् भजति**' सिद्ध होता है।

अभिहिते तु कर्मणि प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमैव। यदि कर्म अनुक्त न होकर उक्त होता है। तो अभिहिते तु कर्मणि – उस उक्त कर्म में प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति ही होती है अर्थात् कर्म के अनुक्त होने पर द्वितीया विभक्ति और उसके उक्त होने पर प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे – '**हरिः सेव्यते**' इस वाक्य में '**सेव्**' धातु से कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ है, अतः कर्म उक्त हुआ। इसी प्रकार '**लक्ष्म्या सेवितो हरिः**' में '**क्त**' प्रत्यय ''**तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः**'' से कर्म अर्थ में हुआ है। अतः कर्म के उक्त होने के कारण प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।
अभिधानं च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः। यहॉ जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि कर्म आदि किसके द्वारा उक्त होते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में मूल में यह वाक्य कहा गया है। अर्थात् तिङ्, कृत्, तद्धित और समास के द्वारा कर्म निर्दिष्ट होने पर अभिहित अर्थात् उक्त और न होने पर अनभिहित माने जाते हैं।

अब उक्त का क्रमशः उदाहरण दिया जा रहा है।
तिङ् – हरिः सेव्यते (हरि की सेवा की जाती है अथवा हरि सेवित होते हैं)। यहॉ '**सेव्**' धातु से ''**लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः**'' सूत्र के द्वारा लकार कर्म अर्थ में हुआ है। अतः हरिः सेव्यते वाक्य का कर्म लकार तिङ् के द्वारा उक्त हो गया है। ''**भावकर्मणोः**'' सूत्र के द्वारा आत्मनेपद भी हो गया है – सेव्यते बना। अनुक्त कर्म में द्वितीया होती है किन्तु उक्त कर्म होने पर तो प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा ही होगी। यहॉ पर तिङ् के द्वारा उक्त कर्म और वाक्य में प्रयुक्त कर्मपद के साथ सामानाधिकरण्य हो जाता है। अतः कर्मभूत हरि शब्द से प्रथमा हो गयी – '**हरिः सेव्यते**'। इस वाक्य में कर्ता का अध्याहार है। '**यस्मिन् प्रत्ययः स**

उक्तः' की रीति से कर्म के उक्त होने के कारण कर्म के अतिरिक्त सभी अनुक्त हो जाते हैं, अतः कर्ता भी अनुक्त हो गया है। कर्ता के अनुक्त होने पर ''**कर्तृकरणयोस्तृतीया**'' सूत्र से तृतीया विभक्ति होकर '**भक्तेन**' बन गया है। इस तरह यह कर्मवाच्य का प्रयोग है। इसी प्रकार समस्त कर्मवाच्य प्रयोगों में समझना चाहिये।

कृत् – लक्ष्म्या सेवितः हरिः (लक्ष्मी के द्वारा सेवित हरि)। यहॅा '**सेव्**' धातु से ''**तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः**'' के अनुसार निष्ठा सूत्र से कर्म में '**क्त**' प्रत्यय होकर सेवितः बना है। यहॅा पर '**लक्ष्म्या सेवितः**' वाक्य का कर्म कृत्संज्ञक प्रत्यय '**क्त**' के द्वारा उक्त हो गया है। अनुक्त कर्म में द्वितीया होती है किन्तु उक्त कर्म होने पर तो प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा ही होगी। यहॅा पर कृत् के द्वारा उक्त कर्म और वाक्य में प्रयुक्त कर्म के साथ सामानाधिकरण्य हो जाता है। अतः कर्मभूत हरि शब्द तथा उसके क्रियापद सेवितः में प्रथमा विभक्ति हो गयी। '**लक्ष्म्या सेवितो हरिः**' वाक्य बन जाता है। इस वाक्य में कर्तृपद लक्ष्मीः है। '**यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः**' की रीति से कर्म के उक्त होने के कारण कर्म के अतिरिक्त सभी अनुक्त हो जाते हैं, अतः कर्ता भी अनुक्त हो गया है। कर्ता के अनुक्त होने पर ''**कर्तृकरणयोस्तृतीया**'' से तृतीया विभक्ति होकर लक्ष्म्या बन गया है।

तद्धित – शतेन क्रीतः शत्यः (सौ से खरीदा गया पदार्थ)। यहॅा पर शत शब्द से '**तेन क्रीतम्**' के अर्थ में ''शताच्च ठन्यतावशते'' सूत्र से तद्धितीय यत् प्रत्यय होकर शत्यः बना है। यहॅा पर शत्य में '**कर्तृनिष्ठव्यापारप्रयोज्यफलाश्रयरूपकर्मत्व**' है किन्तु यह कर्म तद्धित से उक्त हो गया है। वह इस प्रकार कि 'क्री' धातु से कर्म अर्थ में '**क्त**' प्रत्यय होकर क्रीतः बनता है, उस अर्थ में ही तद्धित '**यत्**' प्रत्यय हुआ है। अतः इस तद्धित के द्वारा परम्परया कर्मार्थ उक्त माना जाता है। इस तरह कर्म के उक्त होने पर कर्ता आदि सभी अनुक्त हो जाते हैं। अतः यहॅा पर उक्त कर्म में द्वितीया नहीं होगी।

समास – प्राप्त आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः (जिसको आनन्द प्राप्त हो गया है)। यहॅा पर ''**अनेकमन्यपदार्थे**'' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ है। प्राप्त शब्द में ''**गत्यर्थाकर्मकश्लिशशीङस्थासवसनरूहजीर्यतिभ्यश्च**'' सूत्र से कर्ता अर्थ में '**क्त**' प्रत्यय हुआ है। अतः आनन्द कर्ता है और '**कर्तृनिष्ठव्यापारप्रयोज्यफलाश्रयरूपकर्मत्व**' अन्यपदार्थ में होने से अन्य पदार्थ प्राप्तानन्द कर्म है। किन्तु कर्म के उक्त होने के कारण द्वितीया विभक्ति नहीं होती। अतः प्रथमाविभक्ति होकर '**प्राप्त आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः**' वाक्य बना।

अभिधानं च प्रायेण। सिद्धान्तकौमुदी की वृत्ति में दीक्षित जी ने '**अभिधानं च प्रायेण**' वाक्य में जो प्रायेण शब्द का प्रयोग किया है, उसका तात्पर्य यह है कि प्रायः तो तिङ्, कृत्, तद्धित, समास से उक्त होता है किन्तु कहीं–कहीं पर अन्य तरीके से भी उक्त हो जाता है। वह अन्य तरीका है – **क्वचिन्निपातेनाभिधानम्**। अर्थात् कहीं–कहीं निपात के द्वारा भी कर्म का अभिधान हो जाता है।

उदाहरण – विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुम् असाम्प्रतम्। यह नीतिश्लोक है। **श्लोकार्थ :–** विषवृक्ष का भी संवर्धन यदि स्वयं के द्वारा किया गया हो तो उसका स्वयं ही छेदन करना अनुचित है।

प्रस्तुत उदाहरण में साम्प्रतम् का अर्थ 'युज्यते' अर्थात् उचित है। न साम्प्रतम् असाम्प्रतम् अर्थात् न युज्यते इति। विषवृक्ष का अन्वय असाम्प्रतम् के साथ ही होता है किन्तु संवर्ध्य और छेत्तुम् के साथ भी अन्वय होता ही है। यहाँ विषवृक्ष संवर्धनक्रिया का कर्म है परन्तु अपि इस निपात के द्वारा वह कर्म उक्त हो जाता है और उसकी ''**चादयोऽसत्त्वे**'' से निपातसंज्ञा हो जाती है तथा विषवृक्ष शब्द का असाम्प्रतम् के साथ योग होने के कारण विषवृक्ष उक्त निपात से ही अभिहित हो जाता है। इसलिए कर्म के अभिहित हो जाने से विषवृक्ष में ''**कर्मणि द्वितीया**'' से द्वितीया नहीं होती किन्तु प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा होकर विषवृक्षः बन जाता है।

सूत्र – तथायुक्तं चानीप्सितम् 1/4/50

वृत्ति – ईप्सिततमवत्क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशति। ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते।

पदविश्लेषण – तथायुक्तं प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनीप्सितम् प्रथमान्तं त्रिपदात्मकमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ – ईप्सिततम कर्म की तरह ही जो अनीप्सित होते हुए भी कर्ता की क्रिया से युक्त है तो उस अनीप्सित कारक की भी कर्मसंज्ञा होती है। ईप्सित और अनीप्सित अर्थात् चाहना और नहीं चाहना। ''**कर्तुरीप्सितमं कर्म**'' सूत्र से ईप्सित की तो कर्म संज्ञा होती है। किन्तु प्रस्तुत सूत्र अनीप्सित की भी कर्मसंज्ञा का विधान करता है। अनीप्सित कर्म दो प्रकार का होता है – **द्वेष्यकर्म** और **उपेक्ष्यकर्म**। इन्हीं दोनों कर्मों को प्रकृत सूत्र के द्वारा बतलाया गया है।

उदाहरण – **ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (देवदत्त गॉव को जाता हुआ तिनके को छूता है)।** मुख्य क्रिया जाना है और अमुख्य क्रिया छूना है। यहॉ गमनरूप प्रधान धात्वर्थ व्यापार से युक्त होने के कारण ईप्सिततम कर्म ग्राम है। अतः उसकी ''**कर्तुरीप्सितमं कर्म**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा हो जाती है। प्रस्तुत उदाहरण में गॉव जाते हुए तिनके को छूना तो ईप्सित नहीं है। अब उसमें कौन सी विभक्ति हो सकती है? इसी समस्या के समाधान के लिए ''**तथायुक्तं चानीप्सितम्**'' सूत्र बनाया गया और अनीप्सित कारक तृण की भी कर्मसंज्ञा होती है। ''**कर्मणि द्वितीया**'' से द्वितीया विभक्ति होकर '**ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति**' वाक्य बना।

ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते (भात खाता हुआ विष भी खाता है)। मुख्य क्रिया भुङ्क्ते है और अमुख्य क्रिया भुञ्जानः है। अतः प्रधान व्यापार प्रयोज्य फल का आश्रय होने से ईप्सिततम कर्म ओदन की ''**कर्तुरीप्सितमं कर्म**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा हो जाती है। किन्तु भात खाते हुये विष का भी भक्षण हो जाता है। विष अनीप्सित है। अनीप्सित की ''**तथायुक्तं चानीप्सितम्**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होती है। ''**कर्मणि द्वितीया**'' से द्वितीया विभक्ति होकर '**ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते**' वाक्य बना।

सूत्र – अकथितं च 1/4/51

वृत्ति –अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्।।

दुहादीनां द्वादशानां तथा नीप्रभृतीनां चतुर्णां यद्युज्यते तदेवाकथितं कर्म इति परिगणनं कर्त्तव्यमत्यिर्थः। गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। अविनीतं विनयं याचते। तण्डुलानोदनं पचति। गर्गाञ्छतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्म भाषते, अभिधत्ते वक्तीत्यादि। कारकं किम्? माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति। ''अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावे गन्तव्ययोऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्'' (वा 1103–1104)। कुरून् स्वपिति। मासमास्ते। गोदोहमास्ते। क्रोशमास्ते।

पदविश्लेषण – अकथितं प्रथमान्तं, च अव्ययपदं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ – अपादान आदि कारकों के द्वारा अविवक्षित कारक कर्मसंज्ञक होता है। अकथित का तात्पर्य है सामान्यतः न कहना अथवा कहने की इच्छा न करना। यहॉ पर जिज्ञासा होती है कि किसके द्वारा न कहना? अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण के द्वारां यदि वक्ता की तत्तत् कारक के रूप में कहने की इच्छा न हुई हो तो उन कारकों को अकथित कहा जायेगा। ऐसे अकथित सामान्य कारकों की इस सूत्र से कर्मसंज्ञा होती है। प्रकृतसूत्र से सभी अकथित की कर्मसंज्ञा प्राप्त हो रही थी तो इसके लिए श्लोक के द्वारा नियम बनाया गया कि – जिस किसी भी धातु के योग में अकथितों की कर्मसंज्ञा नहीं होती किन्तु दुह्, याच्, पच्, दण्ड, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी हृ, कृष्, वह् इन धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादान आदि विभक्ति के रूप में अविवक्षित हों उनकी कर्मसंज्ञा होती है। अन्यों की नहीं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अपादान आदि विभक्तियॉ होंगी ही नहीं। वे विभक्तियाँ तो होती हैं किन्तु जब वक्ता के द्वारा अपादान आदि तत्तद् रूप में कहने की इच्छा नहीं की गई, तब इस सूत्र के द्वारा उनकी कर्मसंज्ञा की जायेगी। प्रकृत सूत्र के द्वारा कर्मसंज्ञा विधान करने के बाद '**देवदत्तः गां पयः दोग्धि**' वाक्य बनता है। उक्त वाक्य में दो कर्म होने के कारण **एक प्रधान कर्म होगा जिसे इष्टतम कर्म** कहते हैं और **एक अप्रधान कर्म होगा जिसे अकथित कर्म** कहते हैं। दो कर्म होने के कारण यह धातु द्विकर्मक मानी जाती है। जिस वाक्य में ''**अकथितं च**'' की प्रवृत्ति होती है, उस वाक्य का धातु द्विकर्मक ही होगा। ऐसे द्विकर्मक धातुओं की संख्या सोलह है। **ये हैं – दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृष्, कृष्, और वह्।**

इस सूत्र से की जाने वाली संज्ञा **अर्थनिबन्धना है** अर्थात् इस धातुओं से मिलते जुलते अर्थ वाले अन्य धातुओं के योग में भी अकथित की कर्मसंज्ञा की जायेगी।

उदाहरण :– देवदत्तो गां पयः दोग्धि (देवदत्त गाय से दूध दुहता है)। इस वाक्य में कर्ता है देवदत्त, क्रियापद है दोग्धि। दोहनक्रिया द्वारा कर्ता को अत्यन्त अभीष्ट वस्तु है पयः अर्थात् दूध। अतः पयस् को इष्टतम कर्म मानकर ''**कर्तुरीप्तिसततमं कर्म**'' से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति पहले ही हो चुकी है। यहाँ वक्ता गो को अपादान के रूप में कहना नहीं चाहता अपितु उपयुज्यमान पयः के प्रति निमित्त मानता है। इस प्रकार अपादान के रूप में कहने की इच्छा न होने के कारण गो यह अविवक्षित हुआ। उसकी ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा हुयी और ''**कर्मणि द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीयाविभक्ति होकर '**देवदत्तः गां दोग्धि पयः**' वाक्य बनता है।

'बलिं याचते वसुधाम्' (वामन भगवान् बलि से पृथ्वी मांगते हैं)। कर्ता वामन, क्रिया याचते, इष्टतम कर्म वसुधा और अकथित कर्म बलि है। इष्टतम कर्म वसुधा की ''**कर्तुरीप्तिसततमं कर्म**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होती है। यहॉ पर अपादान होने के कारण पंचमीविभक्ति प्राप्त होकर '**बलेः वसुधां याचते**' ऐसा ही सम्भव हो रहा था किन्तु कर्ता के द्वारा अपादान के रूप में कहने की इच्छा न रखने पर ''**अकथितं च**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होकर दोंनों कर्मों में ''**कर्मणि द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। अतः बलिं याचते वसुधाम् वाक्य बनता है।

'तण्डुलानोदनं पचति' (रसोईया चावलों से भात पकाता है)। क्रिया **पचति**, इष्टतम कर्म **ओदन** और अकथित कर्म **तण्डुल** है। इष्टतम कर्म ओदन की ''**कर्तुरीप्तिसततमं कर्म**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होती है और तण्डुल में करण होने के कारण तृतीया विभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता के द्वारा अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा होकर तण्डुल और ओदन में द्वितीयाविभक्ति होकर '**तण्डुलान् ओदनं पचति**' वाक्य बनता है।

गर्गान् शतं दण्डयति (गर्गों से सौ रुपये दण्ड लेता है अर्थात् जुर्माना लगाता है)। यहाँपर क्रिया **दण्डयति**, इष्टतम कर्म **शत** और अकथित कर्म **गर्ग** है। इष्टतम कर्म शत की ''**कर्तुरीप्तिसततमं कर्म**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होती है और गर्ग में अपादान होने के कारण पंचमीविभक्ति की सम्भावना है। किन्तु वक्ता के द्वारा अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीयाविभक्ति हुई। अतः **गर्गान् शतं दण्डयति** वाक्य बनता है।

'व्रजमसरुणद्धि गाम्' (श्रीकृष्ण व्रज में गौ को राकते हैं)। क्रिया **अवरुणद्धि**, इष्टतम कर्म **गौ** और अकथित कर्म **व्रज** है। इष्टतम कर्म गौ की ''**कर्तुरीप्तिसततमं कर्म**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होती है और व्रज में अधिकरण होने के कारण सप्तमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अधिकरण अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा होकर व्रज और गौ में द्वितीयाविभक्ति हुई। अतः '**व्रजम् अवरुणद्धि गाम्**' बना।

माणवकं पन्थानं पृच्छति (पथिक बच्चे से मार्ग पूछता है)। कर्ता **पथिक**, क्रिया **पृच्छति**, इष्टतम कर्म **पन्था** और अकथित कर्म **माणवक** है। इष्टतम कर्म पथिन् की ''**कर्तुरीप्तिसततमं कर्म**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होती है और माणवक में अपादान की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अपादान अविवक्षित होने से अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा होकर माणवक और पथिन् में द्वितीयाविभक्ति हुयी। अतः माणवकं पन्थानं पृच्छति वाक्य बना।

कृषकः वृक्षमवचिनोति फलानि (कृषक वृक्ष से फल तोड़ता या चुनता है)। कर्ता **कृषक**, क्रिया **चिनोति**, इष्टतम कर्म **फल** और अकथित कर्म **वृक्ष** है। यहाँ पर वृक्ष में अपादान होने के कारण पंचमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता द्वारा अपादान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा होकर वृक्ष में द्वितीयाविभक्ति हुयी। इष्टतम कर्म **फल** की ''**कर्तुरीप्सिततमं कर्म**'' से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीयाविभक्ति होती है। अतः '**कृषकः वृक्षमवचिनोति फलानि**' वाक्य सिद्ध होता है।

शतं जयति देवदत्तम्। (यज्ञदत्त देवदत्त से सौ रुपये जीतता है)। कर्ता **यज्ञदत्त**, क्रिया **जयति**, इष्टतम कर्म **शत** और अकथित कर्म **देवदत्त** है। यहॉ पर देवदत्त में अपादान होने के कारण पंचमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता द्वारा अपादान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा होकर देवदत्त में द्वितीयाविभक्ति हुयी। इष्टतम कर्म शत की ''**कर्तुरीप्सिततमं कर्म**'' से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीयाविभक्ति होती है। अतः '**यज्ञदत्तः शतं जयति देवदत्तम्**' वाक्य सिद्ध होता है।

सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति (देव और दानव क्षीरसागर से अमृत मथते हैं)। कर्ता **देवासुर**, क्रिया **मथ्नाति**, इष्टतम कर्म **सुधा** और अकथित कर्म **क्षीरनिधि** है। यहॉ पर क्षीरनिधि में अपादान या अधिकरण होने के कारण पंचमीविभक्ति या सप्तमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता द्वारा अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा होकर क्षीरनिधि में द्वितीयाविभक्ति हुयी। इष्टतम कर्म सुधा की ''**कर्तुरीप्सिततमं कर्म**'' से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीयाविभक्ति होती है। अतः '**देवाः दानवाः च सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति**' वाक्य सिद्ध होता है।

यज्ञदतः देवदत्तं शतं मुष्णाति (यज्ञदत्त देवदत्त से सौ रुपये चुराता है)। कर्ता **यज्ञदत्त**, क्रिया **मुष्णाति**, इष्टतम कर्म **शत** और अकथित कर्म **देवदत्त** है। यहॉ पर देवदत्त में अपादान होने के कारण पंचमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता द्वारा अपादान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा होकर देवदत्त में द्वितीयाविभक्ति हुयी। इष्टतम कर्म की ''**कर्तुरीप्सिततमं कर्म**'' से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीयाविभक्ति होती है। अतः '**यज्ञदत्तः देवदत्तं शतं मुष्णाति**' वाक्य सिद्ध होता है।

ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति (गॉव में बकरी को ले जाता है)। यहॉ नी, हृष्, कृष् और वह् चार धातुओं का प्रयोग है। कर्ता अन्य कोई भी, क्रिया नयति, हरति, कर्षति, वहति

है। प्रस्तुत उदाहरण में इष्टतम कर्म अजा एवं अकथित कर्म ग्राम है। यहाँ पर ग्राम के अधिकरण होने के कारण सप्तमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अधिकरण अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर ''**अकथितं च**'' से कर्मसंज्ञा होकर ''**कर्मणि द्वितीया**'' से ग्राम में द्वितीया विभक्ति हुई। अतः **ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति** वाक्य बनते हैं।

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। ''**अकथितं च**'' सूत्र से की जाने वाली संज्ञा अर्थ पर आधारित है, न कि केवल धातुओं पर। सूत्र से जिन धातुओं के योग में कर्मसंज्ञा होती है, उन धातुओं का जो अर्थ अन्य किसी भी धातु का हो तो उस धातु के योग में भी अकथित मानकर कर्मसंज्ञा होती है। जैसे – '**माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा**' की तरह '**माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्ति इत्यादि**' वाक्य सिद्ध होता है।

कारकं किम्? माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति। प्रकृतसूत्र में '**कारके**' इस के अधिकार की क्या आवश्यकता है? कारके के अधिकार का प्रयोजन है कि अपादानादि के द्वारा अविवक्षित जो कारक, उसकी ही कर्मसंज्ञा हो किन्तु कारकभिन्न की कर्मसंज्ञा न हो। इसीलिए **माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति** इस वाक्य में पथिन् प्रधान कर्म है और द्विकर्मक **प्रच्छ्** धातु का योग है। अपादान कारक की अविवक्षा में पितृ की कर्मसंज्ञा हुयी, किन्तु माणवक शब्द यहाँ सम्बन्धवाची है और सम्बन्ध कारक नहीं है। अतः माणवक की कर्मसंज्ञा नहीं होती। सम्बन्ध में षष्ठी होकर **माणवकस्य** बन जाता है।

''**अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावे गन्तव्ययोऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्**'' (वा 1103–1104)। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थ :– अकर्मक धातुओं के योग में देश, समय, भाव तथा गन्तव्यमार्ग को बतलाने वाले शब्दों की अपादानादि कारकों की अविवक्षा में कर्मसंज्ञा होती है, ऐसा कहना चाहिए।
कुरून् स्वपिति (कुरुदेश में सोता है)। यहाँ स्वप् धातु अकर्मक है। इसके योग में देशवाची कुरु शब्द में अधिकरण की अविवक्षा होने से ''**अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावे गन्तव्ययोऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्**'' वार्तिक से कर्मसंज्ञा हो जाने से ''**कर्मणि द्वितीया**'' **से** द्वितीयाविभक्ति होकर कुरून् स्वपिति वाक्य सिद्ध होता है। इसी प्रकार से 'मासमास्ते'। यहाँ पर आस उपवेशने धातु का प्रयोग है वह अकर्मक है कालवाची मास में प्राप्त अधिकरणसंज्ञा को बाधकर कर्मसंज्ञा एवं द्वितीयाविभक्ति होती है।
'गोदोहमास्ते'। यहाँ पर भी आस उपवेशने धातु का प्रयोग है वह अकर्मक है भाववाची गोदोह शब्द में प्राप्त अधिकरणसंज्ञा को बाधकर प्रकृतसूत्र से कर्मसंज्ञा एवं द्वितीयाविभक्ति होती है।
क्रोशमास्ते। यहाँ पर आस उपवेशने धातु का प्रयोग है वह अकर्मक है इसके योग में गन्तव्यमार्गवाची क्रोश शब्द प्राप्त अधिकरणसंज्ञा को बाधकर प्रकृतसूत्र से कर्मसंज्ञा एवं द्वितीयाविभक्ति होती है।

सूत्र – गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स गतौ 1/4/52

वृत्ति –गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मणामकर्मणां चाणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्।

शत्रूनगमयत्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम्।।
आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्री हरिगतिः।

गति इत्यादि किम्? पाचयत्योदनं देवदत्तेन। अण्यन्तानां किम्? गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं, तमपरः प्रयुङ्क्तेः, गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः। ''**नीवह्योर्न**'' (वा 1109)। नाययति, वाह्यति वा भारं भृत्येन। ''**नियन्तृकर्तृकस्य बहेरनिषेधः**'' (वा 1110)। वाहयति रथं वाहान्सूतः। ''**आदिखाद्योर्न**'' (वा 1109)। आदयति, खादयति वा अन्नं बटुना। ''**भक्षेरहिंसार्थस्य न**'' (वा 1111)। भक्षयत्यन्नं बटुना। अहिंसार्थस्य किम्? भक्षयति बलीवर्दान्सस्यम्। ''**जल्पप्रभृतीनामुपसंख्यानम्**'' (वा 1107)। जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः। ''**दृशेश्च**'' (वा 1108)। दर्शयति हरिं भक्तान्। सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं, न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रति इत्यादीनां न। स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन। ''**षब्दायतेर्न**'' (वा 1105)। शब्दाययति देवदत्तेन। धात्वर्थसङ्गृहीतकर्मत्वेनाकर्मकत्वात्प्राप्तिः। येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न सम्भवति, तेऽत्राऽकर्मकाः, न त्वविवक्षितकर्माणोऽपि। तेन '**मासमासयति देवदत्तम्**' इत्यादौ कर्मत्वं भवति। देवदत्तेन पाचयति। इत्यादौ तु न।

पदविश्लेषण :– गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानंच गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि, तानि अर्थाः येषां तां ते गतिबद्धिप्रत्यवसानार्थाः (धातवः)। शब्दः कर्म येषां ते शब्दकर्माणः। अविद्यमानं कर्म येषां ते अकर्मकाः। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्माणश्च अकर्मकाश्च ते गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकास्तेषाम्। न णिः अणिः, अणौ कर्ता अणिकर्ता। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणां षष्ठ्यन्तम्, अणिकर्ता प्रथमान्तं, स प्रथमान्तं, णौ सप्तम्यन्तम् अनेकपदात्मकमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ :– गति अर्थ वाली धातु, ज्ञान अर्थ वाली धातु, भोजन अर्थ वाली धातु, शब्दकर्मक धातु और अकर्मक धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है। प्रकृत सूत्र में चुरादिगण (स्वार्थिक णिजन्त) में पठित णिच् का ग्रहण न होकर ''**हेतुमति च**'' सूत्र से पठित णिच् का ही ग्रहण किया जाता है। गम्, इण्, आदि धातुयें गत्यर्थक हैं। बुध्, ज्ञा, विद् आदि धातुयें ज्ञानार्थक हैं। प्रत्यवसान का अर्थ है – भक्षण। अतः भक्ष्, अश्, अद्, भुज् आदि भक्षणार्थक धातु हैं। शब्दकर्मक का अर्थ है – जिनका कर्म कोई शब्द होता हो। अकर्मक का अर्थ है – जिस धातु के फल और व्यापार का आश्रय एक ही हो। अकर्मक धातु का सामान्य दशा में जो कर्ता होता है, वह प्रेरणार्थक क्रिया में कर्म बन जाता है। इस सूत्र के अर्थ को समझने के पहले ण्यन्त कर्ता और अण्यन्त कर्ता को समझना जरूरी है।

ण्यन्तप्रकरण में **पठति** से **पाठयति**, **चलति** से **चालयति**, **भवति** से **भावयति** आदि रूप बनते हैं। किसी भी धातु से प्रेरणा अर्थ में 'णिच्' होकर पुनः उसकी धातुसंज्ञा होकर लट् आदि लकार आते हैं। 'णिच्' – प्रत्यय लगने के बाद धातु ण्यन्त हो जाता है। 'णिच्' नहीं हुआ है तो वह अण्यन्त कहलायेगा। सामान्य धातु का कर्ता अन्य कुछ होता है तो णिजन्त धातु का

कर्ता अन्य ही होता है। जैसे – '**देवदत्तः पठति**' (देवदत्त पढता है) में पठ् धातु है और अण्यन्त है। यहाँ अण्यन्त अवस्था का कर्ता देवदत्त है। अब पठ् धातु से णिच् कर दें, ण्यन्त होकर **पाठयति** बनेगा। **पाठयति** का अर्थ हुआ पढ़ाता है। पढने वाला देवदत्त था तो पढ़ाने वाला अन्य कोई होगा। आचार्य पढ़ाते हैं, अतः पढ़ाने के कर्ता आचार्य हुए। तब वाक्य बना – **आचार्यः देवदत्तं पाठयति**। इस प्रकार से आपने देखा कि अण्यन्त अवस्था में जो देवदत्त कर्ता था वह ण्यन्त अवस्था में कर्म हुआ। **देवदत्तः पठति, आचार्यः तं देवदत्तं पाठयति (देवदत्त पढता है और आचार्य उस देवदत्त को पढ़ाते हैं)**। दो वाक्यों में एक अण्यन्त अवस्था का वाक्य है तो एक ण्यन्त अवस्था का। यह सूत्र अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा करता है। उक्त वाक्य में अण्यन्त अवस्था का कर्ता देवदत्त था, उसी की इस सूत्र से कर्मसंज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल ''**कर्मणि द्वितीया**'' से द्वितीया विभक्ति होना।

ण्यन्त वाक्य बनने पर दो कर्म होते हैं। अण्यन्त अवस्था का कर्ता ही ण्यन्त अवस्था में कर्म बन जाता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होने पर भी उसको प्रयोज्य कर्ता कहते हैं और ण्यन्तावस्था के कर्ता की प्रयोजक कर्ता। ण्यन्तावस्था का कर्ता प्रयोजक, प्रेरक होता है अतः उसे प्रयोजक कर्ता कहा जाता है और उसका कर्म प्रेर्य होने के कारण प्रयोज्य कर्ता कहलाता हैं।

वृत्तिकार ने वृत्ति में श्लोक के माध्यम से उदाहरण प्रस्तुत किये हैं –

> शत्रूनगमयत्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
> आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम्।।
> आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्री हरिगतिः।

श्लोकार्थ :– श्री हरि ने शत्रुओं को भी स्वर्ग पहुँचाया, स्वजनों को वेदार्थ का ज्ञान कराया, देवताओं को अमृत पिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया और पृथिवी को जल में स्थापित किया, वे श्री हरि मेरी गति हैं। इस पद्य में पाँच वाक्य हैं और उनका कर्ता एक मात्र श्रीहरिः है।

'श्री हरिः शत्रून् अगमयत् स्वर्गम्' (श्री हरि ने शत्रुओं को स्वर्ग पहुँचाया)। शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्, तान् श्रीहरिः प्रैरयत् इति शत्रून् स्वर्गम् अगमयत्। यहाँ '**गम्लृ**' गतौ धातु का प्रयोग है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है – '**शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्**'। प्रस्तुत वाक्य में कर्ता शत्रवः, इष्टतम कर्म स्वर्गम्, क्रिया अगच्छन् है। उनको स्वर्ग पहुँचाने वाले श्रीहरि प्रयोजक कर्ता हैं। क्रिया अगच्छन् को ण्यन्त में ''**हेतुमति च**'' सूत्र से णिच् इत्यादि कार्य करके अगमयत् बना। अण्यन्तावस्था में कर्ता शत्रु थे और ण्यन्तावस्था में कर्ता श्रीहरि हैं। गत्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्तावस्था के कर्ता शत्रु की ''**गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ**'' से कर्मसंज्ञा हो गयी। द्वितीयाविभक्ति होकर वाक्य बना – **श्रीहरिः शत्रून् स्वर्गम् अगमयत्**। यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता शत्रु और प्रयोजक कर्ता श्रीहरि हैं।

श्री हरिः वेदार्थं स्वान् अवेदयत् (श्री हरि ने स्वजनों को वदार्थ का ज्ञान कराया)। स्वे वेदार्थम् अविदुः, तान् श्रीहरिः प्रैरयत् इति वेदार्थं स्वान् अवेदयत्। यहॉ पर बुद्धयर्थक **'विद्'** ज्ञाने धातु का उदाहरण है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है – **'स्वे वेदार्थम् अविदुः'**। प्रस्तुत वाक्य में कर्ता स्वे, इष्टतम कर्म वेदार्थम्, क्रिया अविदुः है। उनको वेदार्थ का ज्ञान कराने वाले श्रीहरि प्रयोजक कर्ता हैं। क्रिया अविदुः ण्यन्तावस्था में **''हेतुमति च''** सूत्र से णिच् इत्यादि कार्य करके अवेदयत् बना। अण्यन्तावस्था में कर्ता स्वे थे और ण्यन्तावस्था में कर्ता श्रीहरि हैं। बुद्धयर्थ धातु का योग है। अण्यन्तावस्था के कर्ता स्वे की **''गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता सा णौ''** से कर्मसंज्ञा हो गयी। द्वितीयाविभक्ति होकर वाक्य बना – **श्रीहरिः स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्**। यहॉ पर प्रयोज्य कर्ता स्वे और प्रयोजक कर्ता श्रीहरि हैं।

श्री हरिः आशयच्चामृतं देवान् (श्री हरि ने देवताओं को अमृत पिलाया)। देवाः अमृतम् आश्नन्, तान् श्रीहरिः प्रैरयत् इति देवान् अमृतम् आशयत्। यहॉ पर प्रत्यवसानार्थ अश भोजने धातु का उदाहरण है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है – **'देवाः अमृतम् आश्नन्'**। प्रस्तुत वाक्य में कर्ता देवाः, इष्टतम कर्म अमृतम्, क्रिया आश्नन् है। उनको अमृत का पान करान वाले श्रीहरि प्रयोजक कर्ता हैं। क्रिया आश्नन् ण्यन्तावस्था में **''हेतुमति च''** सूत्र से णिच् इत्यादि कार्य करके आशयत् बना। अण्यन्तावस्था में कर्ता देवाः थे और ण्यन्तावस्था में कर्ता श्रीहरि हैं। प्रत्यवसानार्थ धातु का योग है। अण्यन्तावस्था के कर्ता देवाः की **''गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता सा णौ''** से कर्मसंज्ञा हो गयी। द्वितीयाविभक्ति होकर वाक्य बना – श्रीहरिः देवान् अमृतम् आशयत्। यहॉ पर प्रयोज्य कर्ता देवाः और प्रयोजक कर्ता श्रीहरि हैं।

श्री हरिः वेदम् अध्यापयत् विधिम् (श्री हरि ने ब्रह्मा को वेद पढ़ाया)। विधिः वेदम् अध्यैत, तम् श्रीहरिः प्रैरयत् इति विधिं वेदमध्यापयत्। यहॉ पर शब्दकर्मक अधिपूर्वक इङ् अध्ययने धातु का उदाहरण है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है – **'विधिः वेदम् अध्यैत्'**। प्रस्तुत वाक्य में कर्ता विधिः, इष्टतम कर्म वेदम्, क्रिया अध्यैत् है। उनको पढ़ाने वाले श्रीहरि प्रयोजक कर्ता हैं। क्रिया अध्यैत् ण्यन्तावस्था में **''हेतुमति च''** सूत्र से णिच् इत्यादि कार्य करके अध्यापयत् बना। अण्यन्तावस्था में कर्ता ब्रह्मा थे और ण्यन्तावस्था में कर्ता श्रीहरि हैं। शब्दकर्मक धातु का योग है। अण्यन्तावस्था के कर्ता विधि की **''गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता सा णौ''** से कर्मसंज्ञा हो गयी। द्वितीयाविभक्ति होकर वाक्य बना – **श्रीहरिः विधिं वेदम् अध्यापयत्**। यहॉ पर प्रयोज्य कर्ता विधिः और प्रयोजक कर्ता श्रीहरि हैं।

श्री हरिः आसयत् सलिले पृथ्वीम् (श्री हरि ने पृथ्वी को जल में रखा)। पृथ्वी सलिले आस्त, ताम् श्रीहरिः प्रैरयत् इति पृथ्वीं सलिले आसयत्। यहॉ पर अकर्मक अस भुवि धातु का उदाहरण है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है – **'पृथ्वी सलिले आस्त'**। प्रस्तुत वाक्य में कर्ता पृथ्वी, क्रिया

आस्त है। पृथ्वी को स्थापित करने वाले श्री हरि प्रयोजक कर्ता हैं। क्रिया आस्त ण्यन्तावस्था में ''**हेतुमति च**'' सूत्र से णिच् इत्यादि कार्य करके आसयत् बना। अण्यन्तावस्था में कत्री पृथ्वी थी और ण्यन्तावस्था में कर्ता श्रीहरि हैं। अकर्मक धातु का योग है। अण्यन्तावस्था के कर्ता पृथ्वी की ''**गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता सा णौ**'' से कर्मसंज्ञा हो गयी। द्वितीयाविभक्ति होकर वाक्य बना – **श्रीहरिः पृथ्वीम् सलिले आसयत्**। यहॉ पर प्रयोज्य कर्ता पृथ्वी और प्रयोजक कर्ता श्रीहरि हैं।

गति इत्यादि किम्? पाचयत्योदनं देवदत्तेन (श्री हरि ने शत्रुओं को स्वर्ग पहुॅचाया)। यहॉ प्रश्न है कि प्रस्तुत सूत्र में ''**गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणाम्**'' पद का तात्पर्य क्या है? केवल ''**अणि कर्ता स णौ**'' इतना मात्र बनाते तो क्या हानि है? इसका उत्तर है – '**पाचयत्योदनं देवदत्तेन**' इत्यादि वाक्यों में गत्यादि से अण्यन्तावस्था के कर्ता की कर्मसंज्ञा न हो। इसलिए सूत्र में उक्त शब्दों का ग्रहण करना आवश्यक है। क्योंकि यदि सूत्र ''**गति.... इत्यादि**'' भाग न पढ़ा जाय तो सूत्र का अर्थ होगा – किसी भी धातु के अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा हो । ऐसा अर्थ होने पर मूलोक्त सभी उदाहरण बन जायेंगे। किन्तु '**पाचयति ओदनं देवदत्तेन**' वाक्य में गति इत्यादि अर्थ न होने पर भी अण्यन्तावस्था का कर्ता देवदत्त की भी कर्मसंज्ञा होकर द्वितीयाविभक्ति का विधान होने लगेगा। देवदत्त में द्वितीया न हो इसलिए सूत्र में गति इत्यादि आवश्यक है। यहॉ पर प्रेरककर्ता उक्त होता है, परन्तु प्रयोज्य कर्ता अनुक्त ही रहता है। अतः ''**कर्तृकरणयोस्तृतीया**'' से तृतीया होकर '**यज्ञदत्तो देवदत्तेन ओदनं पाचयति**' ऐसा प्रयोग बन जाता है।

अण्यन्तानां किम्? गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं, तमपरः प्रयुङ्क्तेः गमयति देवदत्तेन। यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः। पुनः प्रश्न है कि गत्यर्थक प्रकृतसूत्र में **अण्यन्तानाम्** अर्थ वाले अणि शब्द का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान बताते हैं कि गत्यर्थक आदि धातुओं की अण्यन्त अवस्था में जो कर्ता, वह ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञक हो किन्तु जो स्वयं ण्यन्तावस्था का कर्ता हो, उसकी कर्मसंज्ञा न हो। जैसे कि – '**यज्ञदत्तो गच्छति**' इस अण्यन्तावस्था का कर्ता यज्ञदत्त है। इस वाक्य को ण्यन्त करने पर प्रयोजक कर्ता के रूप में देवदत्त पद आया और धातु का णिजन्त रूप गमयति बना। गत्यर्थक धातु का प्रयोग होने के कारण अण्यन्तावस्था के कर्ता यज्ञदत्त की ''**गतिबुद्धि....**'' से कर्मसंज्ञा एवं द्वितीयाविभक्ति होकर '**देवदत्तो यज्ञदत्तं गमयति**' वाक्य बना और इसका अर्थ होता है '**देवदत्त यज्ञदत्त को भेजता है**'। दुबारा प्रेरणार्थ गमि धातु से णिच् करने पर एक कर्ता और जोडने पर वाक्य बनेगा '**विष्णुमित्रः देवदत्तेन यज्ञदत्तं गमयति**' इस उदाहरण में देवदत्त जो कर्ता है वह अण्यन्तावस्था का कर्ता कभी नहीं रहा। अतः देवदत्त की कर्मसंज्ञा न हो इसलिए अण्यन्तावस्था का जो कर्ता है उसी की प्रकृतसूत्र कर्मसंज्ञा का विधान किया गया।

''**नीवह्योर्न**'' (वा 1109)। यह वार्तिक है। **वार्तिकार्थ** :– नी तथा वह् धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती।

ये दोनों धातुयें गत्यर्थक हैं, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध क्रिया गया है।

नाययति भारं भृत्येन (देवदत्त भृत्य से भार ढोवाता है)। यहॉ अण्यन्तावस्था का वाक्य है – भृत्यो भारं नयति। इसका वाक्य का कर्ता है भृत्य। क्रिया है नयति। नी धातु से ण्यन्त करने पर '**नाययति**' बनता है। गत्यर्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता भृत्य की ''**गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्म– काणामणिकर्ता स णौ**'' कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका ''**नीवह्योर्न**'' इस वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु ''**कर्तृकरणयोस्तृतीया**'' से करणार्थ में तृतीया होकर '**भृत्येन भारं नाययति**' वाक्य बनता है। इसी तरह '**वाहयति भारं भृत्येन**' (**देवदत्त भृत्य से भार ढोवाता है**) वाक्य भी बनता है।
'**नियन्तृकर्तृकस्य बहेरनिषेधः**' (**वा 1110**)। यह भी वार्तिक है। **वार्तिकार्थ** :– यदि '**वह्**' धातु का कर्ता नियन्त्रक, नियन्ता, सारथि आदि के रूप में हो तो अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा का निषेध नहीं होता।

इस वार्तिक के द्वारा ''**नीवह्योर्न**'' से प्राप्त कर्मसंज्ञा के निषेध का भी निषेध होता है।
उदाहरण – 'वाहयति रथं वाहान् सूतः' (सारथि घ़ोडों से रथ चलवाता है)। सूत–सारथि नियन्त्रण करने वाला कर्ता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है – वाहाः रथं वहन्ति (वहन्ति इति वाहाः–अश्वाः) इसका कर्ता है– वाहाः अर्थात् घ़ोडे। वहन्ति को ण्यन्त में वाहयति बनता है। गत्यर्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता वाह की ''**गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ**'' से प्राप्त कर्मसंज्ञा का ''**नीवह्योर्न**'' इस वार्तिक से निषेध प्राप्त हुआ। तदनन्तर ''**नियन्तृकर्तकस्य वहेरनिषेधः**'' वार्तिक से अनिषेध होने पर पुनः ''**गतिबुद्धि...**'' सूत्र से ही कर्मसंज्ञा हो जाती है। द्वितीयाबहुवचन में वाहान् बन जाता है।

आदिखद्योर्न (वा 1109)। यह वार्तिक है। **वार्तकार्थ** :– अद् और खाद् धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती।
ये दोनों धातुयें प्रत्यवसानार्थक हैं, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध किया जाता है।

उदाहरण :– 'आदयति अन्नं बटुना' (बालक को अन्न खिलाता है)। यहॉ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है – बटुः अन्नम् अत्ति। इसका कर्ता है – बटु। भक्षणार्थक अद् धातु को ण्यन्त करने पर आदयति बनता है। प्रत्यवसानार्थ होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता बटु की ''**गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ**'' से प्राप्त कर्मसंज्ञा का ''**आदिखाद्योर्न**'' इस वार्तिक से निषेध हो जाने पर द्वितीयाविभक्ति नहीं होती। ''**कर्तृकरणयोस्तृतीया**'' सूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर बटुना बन जाता है। इसी प्रकार '**खादयति**

अन्नं बटुना' भी बनता है। ''**भक्षेरहिंसार्थस्य न**'' (**वा 1111**)। यह वार्त्तिक है। पूर्व वार्तिकों की तरह इसमें भी ''**कारके**'' का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से अणिकर्ता, णौ और ''**कर्तुरीप्तिसततमं कर्म**'' से कर्म की अनुवृत्ति रहती है। **वार्तिकार्थ** :– अहिंसार्थक भक्ष् धातु के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। यह धातु प्रत्यवसानार्थक है, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध किया गया है। भोजन, रोटी, अन्न खाना हिंसा नहीं है।

उदाहरण :– **भक्षयत्यन्नं बटुना (देवदत्त बटु को अन्न खिलाता है)**। '**भक्ष्**' धातु चुरादि की है। अतः स्वार्थिक णिच् होकर भक्षयति रूप बनता है। स्वार्थिक णिजन्त से प्रेरणा अर्थ में ''**हेतुमति च**'' पुनः णिच् होने पर प्रथम णिच् का ''**णेरनिटि**'' सूत्र से लोप होने से बाद भी **भक्षयति** ही बनता है। अण्यतावस्था का वाक्य है – बटुः अन्नं भक्षयति। भक्ष् धातु प्रत्यवसानार्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता बटु की ण्यन्तावस्था में ''**गतिबुद्धिप्रत्यसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका ''**भक्षेरहिंसार्थस्य न**'' वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु ''**कर्तृकरणयोस्तृतीया**'' से तृतीया होकर '**भक्षयति अन्नं बटुना**' वाक्य बनता है।

अहिंसार्थकस्य किम? भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्। प्रकृत वार्तिक में अहिंसार्थस्य पद का क्या प्रयोजन है? उत्तर – हिंसार्थक नहीं है, ऐसे धातु के अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा का निषेध होता। जैसे – '**भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्**' (बैंलों को फसल खिलाता है)। यहॉ पर अण्यन्तावस्था है – '**भक्षयन्ति बलीवर्दाः सस्यम्**'। यहॉ प्रेरणार्थक अण्यन्तावस्था के कर्ता बलीवर्दा की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा का निषेध नहीं हुआ अपितु प्रकृतसूत्र से ही कर्मसंज्ञा होकर '**भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्**' वाक्य बनता है।

''**जल्पति प्रभृतीनामुपसंख्यानम्**''। यह भी वार्तिक है। **वार्तिकार्थ** :– जल्प् आदि धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है। प्रकृतसूत्र के पॉच प्रकार की धातुओं में जल्प् आदि धातुओं का अन्तर्भाव न होने के कारण कर्मसंज्ञा अप्राप्त होने पर इस वार्तिक का अवतरण किया गया है। वार्तिक में प्रभृति शब्द से व्यावहरति, वदति आदि क्रियाओं का भी संग्रह मान लिया जाता हैं भाष्य में जो जल्पति, विलपति, आभाषते को ही जल्पतिप्रभृति माना है। इस विषय में कुछ आचार्य मानते हैं। कि जल्पत्यादि की यही परिगणन से है अर्थात् इतनी ही धातुओं को जल्पत्यादि माना गया है। कुछ और आचार्य कहते हैं कि भाष्य में सम्पूर्ण जल्पत्यादि धातुओं का परिगणन नहीं है, अपितु उदाहरण मात्र दिया गया है, वास्तव में जल्पत्यादि बहुत धातुयें हैं।

उदाहरण – 'जल्पयति **धर्मं पुत्रं देवदत्तः**' (**देवदत्त पुत्र से धर्म कहलवाता है**)। यहॉ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है – '**जल्पति धर्मं पुत्रः**' और इसका कर्ता है – पुत्र। ण्यन्तावस्था में जल्पयति बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता पुत्र की ''**जल्पतिप्रभृतीनामुखसंख्यानम्**'' से

कर्मसंज्ञा हो जाने पर द्वितीया होकर **देवदत्तः धर्मं पुत्रं जल्पयति**' वाक्य बनता है। इसी प्रकार से '**देवदत्तः धर्मं पुत्रं भाषयति**' वाक्य भी बनता है। दृशेश्च (वा 1108)। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थ :– दृश् धातु के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है।

उदाहरण :– 'दर्शयति हरिं भक्तान्' (पुजारी भक्तों को हरि का दर्शन कराता है)। यहॉ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है – भक्ताः हरिं पश्यन्ति और इसका कर्ता है – भक्त। दृश् धातु के ण्यन्तावस्था में दर्शयति बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता भक्त की ''**दृशेश्च**'' वार्तिक से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीयाविभक्ति होती है। अतः 'दर्शयति हरिं भक्तान्' वाक्य बनता है।

सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं, न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रति इत्यादीनां न। स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन। अर्थात् – ''गतिबुद्धि......'' सूत्र में गृहीत बुद्धि शब्द से सामान्य ज्ञान मात्र अर्थ को प्रकट करने वाली धातुओं का ग्रहण है। तद्विशेषार्थ का ग्रहण नहीं है। इसीलिए स्मृ, घ्रा, दृश् आदि धातुओं का ग्रहण नहीं होता है। यह ''**दृशेश्च**'' वार्तिक के द्वारा ज्ञापित होती है।

''**शब्दायतेर्न**'' **(वा 1105)**। यह वार्तिक है। **वार्तिकार्थ** :– शब्दाय धातु की अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती।

उदाहरण :– शब्दाययति देवदत्तेन (कोई देवदत्त से हल्ला करवाता है)। यहॉ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है – **देवदत्तः शब्दं करोति** (देवदत्त शब्द करता है)। प्रस्तुत वाक्य में कर्ता है – देवदत्त। शब्दाय धातु से ण्यन्त होकर शब्दाययति बनता है। अकर्मक धातु होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता देवदत्त की ण्यन्तावस्था में ''**गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ**'' से कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर ''**शब्दायतेर्न**'' वार्तिक से निषेध हो जाने पर द्वितीयाविभक्ति नहीं होती। अपितु ''**कर्तृकरणयोस्तृतीया**'' सूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर शब्दाययति देवदत्तेन वाक्य बनता है।

धात्वर्थसङ्गृहीतकर्मत्वेनाकर्मकत्वात्प्राप्तिः। जिन धातुओं के अर्थ में कर्म संगृहीत होता है, उनको अकर्मक माना जाता है और '**शब्दाय**' धातु के अर्थ में कर्म संगृहीत हुआ है। अतः अकर्मक मानकर के प्रकृतसूत्र से प्राप्ति थी, जिसका ''**शब्दायतेर्न**'' **वार्तिक** से निषेध किया गया हैं शब्दाय धातु से शब्द करना अर्थ अभिलक्षित है। अतः इसमें अकर्मकत्व स्पष्ट है। अकर्मक धातुयें दो प्रकार की होती हैं। प्रथम तो जिसमें किसी भी स्थिति में कर्म लग ही नहीं सकता और दूसरी उन धातुओं में भी अकर्मकत्वेन व्यवहार होता है जिनमें कर्म के लगने की योग्यता तो होती है किन्तु कर्म की विवक्षा नहीं की जाती। ''**शब्दायतेर्न**'' इस वार्तिक में प्रथम प्रकार की धातुओं का अकर्मकत्वेन ग्रहण है अथवा द्वितीय प्रकार की अकर्मक धातुओं का ग्रहण? यह जिज्ञासा प्रकट होने पर समाधान है कि – येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न सम्भवति, तेऽत्राऽकर्मकाः, न त्वविवक्षितकर्माणोऽपि। अर्थात् जिनका देश और काल से भिन्न

कर्म सम्भव ही न हो, ऐसी धातुयें ही प्रकृत सूत्र में अकर्मक मानी गयी हैं परन्तु जिनमें कर्म अविवक्षित हो, उन्हें यहॉ अकर्मक नहीं कहा गया है।

तेन मासमासयति देवदत्तम् इत्यादौ कर्मत्वं भवति। देवदत्तेन पाचयति। इत्यादौ तु न। अर्थात् देश और काल से भिन्न कर्म जिन धातुओं में सम्भव ही नहीं है, ऐसी धातुओं का प्रकृतसूत्र में अकर्मकत्वेन गृहीत होने के कारण **'मासम् आसयति देवदत्तम्'** में अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा हो जाती है किन्तु **'देवदत्तेन पाचयति'** में अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती।

उदाहरण – **'मासम् आसयति देवदत्तम्'** (देवदत्त को एक मास तक बिठाता है)। **'मासम् आस्ते देवदत्तः'** यह सामान्य अवस्था है। **'आस्'** धातु अकर्मक है। इसमें देश, काल के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म सम्भव नहीं है। अतः अण्यन्त अवस्था के कर्ता देवदत्त की ण्यन्तावस्था में **''गति......''** सूत्र से ही कर्मसंज्ञा होकर **'देवदत्तं मासम् आसयति'** वाक्य बनता है। यहॉ पर **'मासम्'** कर्म के रहते हुये भी धातु को अकर्मक ही माना गया है, क्योंकि उपर्युक्त नियम से देश, काल से भिन्न कर्म के लगने की योग्यता होने पर ही प्रकृतसूत्र में धातु को अकर्मक माना जाता है।

'देवदत्तेन पाचयति'। इसका **'देवदत्तः पचति'** यह सामान्यवस्था है। इसका प्रयोज्यकर्ता देवदत्त है। **'पच्'** धातु में देश, काल से भिन्न कर्म सम्भव होते हैं। यद्यपि प्रकृतवाक्य में कर्म की अविवक्षा की गयी है तथापि कर्म लगने की योग्यता है। उपर्युक्त नियम से इस अविवक्षितकर्म **'पच्'** धातु को अकर्मक नहीं माना जा सकता। अतः अकर्मक धातु को मानकर **''गतिबुद्धि...''** से होने वाली कर्मसंज्ञा यहॉ नहीं हो सकती। अतः **'देवदत्तं पाचयति'** न होकर **'देवदत्तेन पाचयति'** बन जाता है। यहॉ पर कर्म की विवक्षा न किये जाने के कारण पच् धातु अकर्मक है किन्तु प्रकृतसूत्र से अविवक्षितकर्म वाली धातुयें अकर्मत्वेन गृहीत नहीं होती।

सूत्र – हृक्रोरन्यतरस्याम् 1/4/53

वृत्ति :– हृक्रोरणौ यः कर्ता स णौ वा कर्मसंज्ञः स्यात्। हारयति कारयति वा भृत्यं–भृत्येन वा कटम्। अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् (वा 1114) अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा।

पदविश्लेषण :– हा च क्रा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः हृकरौ, तयोः हृक्रोः। हृक्रोः षष्ठीद्विवचनान्तम्, अन्यतरस्याम् विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ :– हृ तथा कृ धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है। प्रकृतसूत्र में **'अन्यतरस्याम्'** पद विकल्पार्थ का बोधक है। इस सूत्र की अप्रवृत्ति में **''कर्तृकरणयोस्तृतीया''** से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण :– हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्। मूलकार ने चार वाक्यों को एकसाथ ही दिया है। इसके पृथक् वाक्य हैं – **'हारयति भृत्यं कटम्'**। **'हारयति भृत्येन कटम्'**। **'कारयति भृत्यं कटम्'**। **'कारयति भृत्येन कटम्'**।

हारयति भृत्यं कटम् और हारयति भृत्येन कटम् (नौकर चटाई ढोवाता है)। यहाँ पर 'हृ' धातु का प्रयोग है। प्रस्तुत वाक्य की अण्यन्तावस्था है – **भृत्यः कटं हरति** (नौकर चटाई ले जाता है)। **'हृ'** धातु से ण्यन्त होने पर **'हारयति'** बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता भृत्य की ण्यन्तावस्था में **''हृक्रोरन्यतरस्याम्''** सूत्र के द्वारा विकल्प से कर्मसंज्ञा होती है। **''कर्मणि द्वितीया''** से द्वितीया होकर **'हारयति भृत्यं कटम्'** वाक्य बनता है और कर्मसंज्ञा न होने के पक्ष में तृतीया होकर **'हारयति भृत्येन कटम्'** बन जाता है।

कारयति भृत्यं कटम् और कारयति भृत्येन कटम् (नौकर से चटाई बनवाता है)। यहाँ पर 'कृ ' धातु का प्रयोग है। प्रस्तुत वाक्य की अण्यन्तावस्था है – **भृत्यः कटं करोति** (नौकर चटाई बनाता है)। **'कृ'** धातु से ण्यन्त होने पर **'कारयति'** बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता भृत्य की ण्यन्तावस्था में **''हृक्रोरन्यतरस्याम्''** सूत्र के द्वारा विकल्प से कर्मसंज्ञा होती है। **''कर्मणि द्वितीया''** से द्वितीया होकर **'कारयति भृत्यं कटम्'** वाक्य बनता है और कर्मसंज्ञा न होने के पक्ष में तृतीया होकर **'कारयति भृत्येन कटम्'** बन जाता है।

''अभिवादिदृशोरात्मने पदे वेति वाच्यम्''। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थ :– आत्मनेपद का प्रयोग होने पर अभि पूर्वक वद् तथा केवल दृश् धातुओं की अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में विकल्प से कर्मसंज्ञा होती है।
जब धातु से 'णिच्' प्रत्यय होता है। तो णिजन्त धातु से **''णिचश्च''** सूत्र के द्वारा कर्तृगामी क्रियाफल होने पर आत्मनेपद अन्यथा परस्मैपद का प्रयोग होता है। इस तरह णिजन्त धातुयें प्रायः उभयपदी हुआ करती हैं। जब णिजन्त आत्मनेपद प्रयोग में आये, तभी यह वार्तिक लगता है। आत्मनेपद का प्रयोग न होने पर कर्मसंज्ञा नहीं होती, वहाँ तृतीया विभक्ति हो जाती है।

उदाहरण :– अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा (भक्तों से देव का अभिवादन करता है)। प्रस्तुत उदाहरण में भी चार उदाहरण बनते हैं – **अभिवादयते देवं भक्तम्। अभिवादयते देवं भक्तेन। दर्शयते देवं भक्तम्। दर्शयते देवं भक्तेन।**
प्रकृत वार्तिक के द्वारा ण्यन्तावस्था के कर्ता की कर्मसंज्ञा का विधान विकल्प से किया गया है। अर्थात् जब कर्मसंज्ञा होती है तब **'अभिवादयते देवं भक्तम्'** बनता है। पक्ष में 'अभिवादयते देवं भक्तेन' बनता है। उसी प्रकार से 'दर्शयते देवं भक्तम्' और 'दर्शयते देवं भक्तेन' बनता है।

सूत्र – अधिशीङ्स्थाऽऽसां कर्म 1/4/46

वृत्ति :– अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात्। अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः।
पदविश्लेषण :– शीङ् च स्थाश्च आस् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वसमासः शीङ्स्थासः, अधेः शीङ्स्थासोऽधिशीङ्स्थासस्तेषामधिशीङ्स्थासाम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भपंचमीतत्पुरुषसमासः। अधिशीङ्स्थासाम् षष्ठीबहुचनान्तं, कर्म प्रथमान्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ :– अधिपूर्वक शीङ्, स्था, आस् धातुओं के आधार की कर्मसंज्ञा होती है।
शीङ् स्वप्ने, ष्ठा गतिनिवृत्तौ और आस उपवेशने धातुओं का ग्रहण है। अधि पूर्वक रहते हुये इन धातुओं की क्रियाओं का जो आधार बनता है, उसकी कर्मसंज्ञा होती है। आधार तीन प्रकार का होता है – औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक। किन्तु प्रकृतसूत्र में गृहीत धातुओं के साथ औपश्लेषिक संयोगादिसम्बन्ध वाला ही आधार ग्रहण किया जाता है।

उदाहरण :– **'अधिशेते वैकुण्ठं हरिः' (हरि वैकुण्ठ में सोते हैं)**। इस वाक्य का कर्ता हरि है और अधिशेते क्रिया का आधार वैकुण्ठ है। अतः उसकी ''**अधिशीङ्स्थासां कर्म**'' से कर्मसंज्ञा हो जाती है। ''**कर्मणि द्वितीया**'' से अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होकर '**हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते**' वाक्य बन जाता है। यदि धातु अधि पूर्व न हो तो इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी। अपितु ''**आधारोऽधिकरणम्**'' सूत्र से वैकुण्ठ की अधिकरणसंज्ञा होकर ''**सप्तम्यधिकरणे च**'' सूत्र से सप्तमी विभक्ति होकर '**हरिः वैकुण्ठे शेते**' ऐसा वाक्य बनेगा। **अधितिष्ठति वैकुण्ठं हरिः और अध्यास्ते वैकुण्ठं हरिः ये दोनों वाक्य भी अधिशेते वैकुण्ठं हरिः** के समान बनते हैं।

सूत्र – अभिनिविशश्च 1/4/47
वृत्ति :– अभिनीत्येतत्सङ्घातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात्। अभिनिविशते सन्मार्गम्। 'परिक्रयणे सम्प्रदानम्'–(सू.580) इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्या अन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात्क्वचिन्न। पापेऽभिनिवेशः।
पदविश्लेषण :– अभिश्च निश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वोऽभिनी, ताभ्यां परो विश् अभिनिवेश्, तस्मात् अभिनिविशः द्वन्द्वगर्भपंचमीतत्पुरुषसमासः। अभिनिविशः षष्ठ्येकवचनान्तं, चाव्ययं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ :– अभि+नि इन समुदाय के पूर्व में रहते जो विश् धातु के आधार की कर्मसंज्ञा होती है।

अभिनि इत्येतत्संघात – अभि+नि इस समुदाय का ग्रहण है। अभिनिवशः इस पद के अनुसार यदि विश् धातु से पूर्व अभि तथा नि इन उपसर्गों का समुदाय रहे अर्थात् अभिनिवशते ऐसा प्रयोग हो तभी इसके आधार की कर्मसंज्ञा होती है। केवल एक उपसर्ग अभि अथवा नि नहीं होना चाहिये और उपसर्ग का व्यत्यास नि+अभि भी नहीं होना चाहिये। **भाष्यकार के अनुसार** न तो अभि और नि उपसर्गों का पृथक्–पृथक् प्रयोग हो सकता है और न ही इनका क्रम परिवर्त्तित हो सकता है।

उदाहरण :– अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग पर मन लगता है)। यहॉ पर अभिनिवेश का आधार सन्मार्ग है। अतः उसको प्राप्त अधिकरणसंज्ञा का बाध करके ''**अभिनिविशश्च**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा हो जाने से ''**कर्मणि द्वितीया**'' से द्वितीया विभक्ति होकर '**अभिनिविशते सन्मार्गम्**' बन जाता है।

'परिक्रयणे सम्प्रदानम्'–(सू.580) इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्या अन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात्क्वचिन्न। 'परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्'(सू.580)। सूत्र से प्रकृतसूत्र में मण्डूकलप्लुति द्वारा अन्तरस्यां की अनुवृत्ति आती है। मण्डूकप्लुति का तात्पर्य है जैसे – मैढक एक स्थान से दूसरे स्थान पर कूदता है। अर्थात् बीच का स्थान रिक्त छूट जाता है। उसी प्रकार से पूर्वसूत्र से बीच के सूत्रों को छोडकर इस सूत्र में अन्यतरस्याम् की अनुवृत्ति आती है। अन्यतरस्याम् का अर्थ व्यवस्थितविभाषा मान लिया जाता है। व्यवस्थितविभाषा का तात्पर्य होता है – कहीं विधिमुख से प्रवृत्त होना, कहीं निषेधमुख से। इसलिए कहीं इस सूत्र की नित्य प्रवृत्ति होगी और क्वचित् न कहीं बिल्कुल प्रवृत्ति ही नहीं होगी। जैसे – अभिनिविशते सन्मार्गम् में नित्य विधिमुख से प्रवृत्ति हुयी है और **पापेऽभिनिवेशः** में अभिनि पूर्वक विश् धातु ही है। व्यवस्थितविभाषा होने से आधारभूत पाप शब्द की कर्मसंज्ञा नहीं हुयी। आधार में अधिकरणसंज्ञा होकर सप्तमी हो जाती है।

सूत्र – उपान्वध्याङ्वसः 1/4/48

वृत्ति :– उपादिपूर्वस्य वसतेराधारः कर्म स्यात्। उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा वैकुण्ठं हरिः। अभुक्त्यर्थस्य च (वा 1087)। वने उपवसति।

> उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
> द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।

उभयतः कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम्। धिक् कृष्णाभक्तम्। उपर्युपरि लोकं हरिः। अध्यधि लोकम्। अधोऽधो लोकम्। **अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (वा 1442–1443)**। अभितः कृष्णम्। परितः कृष्णम्। ग्रामं समया। निकषा लंकाम्। हा कृष्णाभक्तम्। तस्य शोच्यते इत्यर्थः। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्।

पदविश्लेषण :– उपश्च अनुश्च अधिश्च आङ् च उपान्वध्याङः, तेभ्यः परो वस् उपान्वध्याङ्वस्, तस्मात् उपान्वध्याङ्वसः, इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भपंचमीतत्पुरुषसमासः। उपान्वध्याङ्वसः पंचम्येकवचनान्तमेकपदमिति अथवा उपान्वध्याङः पूर्वे यस्य सः उपान्वध्याङ्पूर्वः, उपान्वध्याङ्पूर्वो वस् इति उपान्वध्याङ्वस् इति।

सूत्रार्थ :– उप, अनु, अधि, आङ् पूर्वक वस् धातु के आधार की कर्मसंज्ञा होती है।

उदाहरण :– उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः। वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में चारों उपसर्गों का उदाहरण एक साथ दिया गया है। अतः इनके चार वाक्य बनते हैं –

- उपवसति वैकुण्ठं हरिः।
- अनुवसति वैकुण्ठं हरिः।
- अधिवसति वैकुण्ठं हरिः।
- आवसति वैकुण्ठं हरिः।

उपवसति वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ में रहते हैं)। इस वाक्य में कर्ता है हरिः और क्रिया है उपवसति। निवास का आधार वैकुण्ठ है। आधार होने के कारण उसकी ''**आधारोऽधिकरणम्**'' से अधिकरणसंज्ञा प्राप्त थी। उसे बाधकर ''**उपान्वध्याङ्वसः**'' सूत्र से कर्मसंज्ञा होकर ''**कर्मणि द्वितीया**'' से द्वितीया विभक्ति होती है। अतः '**हरिः वैकुण्ठम् उपवसति**' वाक्य बनता है।

''**अभुक्त्यर्थस्य न**''। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः – उपवास करना अर्थ में वर्तमान उप–पूर्वक वस् धातु के आधार की कर्मसंज्ञा नहीं होती।

अभुक्ति का अर्थ है – भोग न होना, भूखे रहना, उपवास करना। इस वार्तिक के द्वारा प्रकृतसूत्र से प्राप्त कर्मसंज्ञा का निषेध किया जाता है। अतः 'उप–वस्' का रहना, निवास करना अर्थ हो तो कर्मसंज्ञा होती है किन्तु उपवास करना अर्थ होने पर कर्मसंज्ञा नहीं होती। यह द्योतित होता है।
उदाहरण :– वने उपवसति (वन में उपवास करता है)। यद्यपि उपवसति का आधार वन है तथापि ''**अभुक्त्यर्थस्य न**'' वार्तिक से आधार की कर्मसंज्ञा का निषेध हो जाने के कारण ''**आधारोऽधिकरणम्**'' सूत्र से अधिकरणसंज्ञा होकर ''**सप्तम्यधिकरणे च**'' सूत्र से सप्तमी हो जाती है। वने उपवसति वाक्य सिद्ध होता है।

आगे उपपदविभक्ति के बारे में बताया जायेगा। उपपदविभक्ति का तात्पर्य यह है – ''**पदमाश्रित्य जायमाना विभक्तिः उपपदविभक्तिः**'' किसी पद के संयोग, सम्बन्ध, अन्वय, योग आदि से होने वाली विभक्ति उपपदविभक्ति कही जाती है। उपपदविभक्ति से सम्बन्धित द्वितीया विभक्ति का सर्वप्रथम श्लोकवार्तिक है –

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।

प्रस्तुत वार्तिक महाभाष्य में पढ़ा गया है। **वार्तिकार्थ** – तस् प्रत्ययान्त उभ और सर्व शब्दों के योग में, धिक्–शब्द के योग में, ऊपरि, अधि, अधस्, ये शब्द आम्रेडितान्त हो तो इनके योग में रहने वाले दूसरे शब्दों में द्वितीया विभक्ति करनी चाहिये। **ततः अन्यत्र अपि दृश्यते** – उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों के योग में भी कहीं–कहीं द्वितीया विभक्ति देखी

जाती है। सूत्र और वार्तिक में जहॉ पर दृश्यते शब्द का प्रयोग होता है, वहॉ उसका सर्वत्र प्रवृत्ति नहीं मानी जाती किन्तु जहॉ पर इस तरह का शिष्ट प्रयोग देखा जाता है, वहॉ पर प्रवृत्ति माननी चाहिये।

इस वार्तिक के चार भाग करके इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी –

(1) उभसर्वतसोः द्वितीया कार्या –
तद्धित प्रकरण में तसि प्रत्यय होता है, उसी का ग्रहण प्रकृत वार्तिक में है। तसि प्रत्यय का उभ तथा सर्व दोनों शब्दों के साथ सम्बन्ध करके उभयतः, सर्वतः बना लिया जाता है। अतः तस् प्रत्ययान्त उभयतः शब्द तथा तस् प्रत्ययान्त सर्वतः शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण :– उभयतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के दोनों ओर गोप हैं)। यहॉ तस् प्रत्ययान्त उभयतः का योग है। अतः इसके योग में कृष्ण शब्द में ''**उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।**'' श्लोकवार्तिक से द्वितीयाविभक्ति होती है। अतः उभयतः कृष्णं गोपाः वाक्य सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार से सर्वतः कृष्णं गावः भी बनता है।

(2) धिक् इति योगे द्वितीया कार्या। अर्थात् धिक् शब्द के योग में द्वितीया विभक्ति करनी चाहिये है।

उदाहरण :– धिक् कृष्णाभक्तम् (कृष्ण के अभक्त को धिक्कार है)। यहॉ पर निन्दा अर्थ में धिक् शब्द का प्रयोग है। उसके योग में कृष्णाभक्त शब्द में ''**उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।**'' श्लोकवार्तिक से द्वितीयाविभक्ति होकर धिक् कृष्णाभक्तम् वाक्य सिद्ध हो जाता है।

(3) उपर्यादिषु त्रिषु आम्रेडितान्तेषु द्वितीया कार्या। आम्रेडितान्त उपरि, अधि और अधस् इन तीनों शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति करनी चाहिये। शब्द को द्वित्व होने पर द्वितीय रूप की ''**तस्य परमाम्रेडितम्**'' सूत्र से आम्रेडितसंज्ञा होती है, उन्हीं का यहॉ पर ग्रहण है। आम्रेडितान्तेषु शब्द से द्वित्व किया जा चुका है, ऐसा बोध होता है।

उदाहरण :– उपर्युपरि लोकं हरिः (हरि इस लोक के ऊपर है)। यहॉ उपरि शब्द का ''**उपर्यध्यधसस्सामीप्ये**'' सूत्र से द्वित्व हुआ है और द्वितीया उपरि शब्द की ''**तस्य परमाम्रेडितम्**'' सूत्र के द्वारा आम्रेडितसंज्ञा हो जाती है। उपरि–उपरि में यण् होकर उपर्युपरि बना है। अतः उपर्युपरि यह आम्रेडितान्त उपरि शब्द है। इसके योग में लोक शब्द में ''**उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।**'' श्लोकवार्तिक से द्वितीयाविभक्ति होकर '**उपर्युपरि लोकं हरिः**' वाक्य सिद्ध हो जाता है।

अध्यधि लोकम् (हरि इस लोक में ही है)। यहाँ भी अधि शब्द का ''**उपर्यध्यधसस्सामीप्ये**'' सूत्र से द्वित्व हुआ है और द्वितीय अधि शब्द की आम्रेडितसंज्ञा भी हो जाती है। अधि–अधि में यण् होकर अध्यधि बना है। अतः अध्यधि यह आम्रेडितान्त अधि शब्द है। इसके योग में लोक शब्द में ''**उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।**'' श्लोकवार्तिक से द्वितीयाविभक्ति होकर '**अध्यधि लोकं हरिः**' वाक्य सिद्ध हो जाता है।

अधोऽधो लोकम् (हरि इस लोक के नीचे नीचे में हैं)। यहाँ पर अधस् शब्द का ''**उपर्यध्यधसस्सामीप्ये**'' सूत्र से द्वित्व हुआ है और द्वितीय अधस् शब्द की आम्रेडिसंज्ञा भी हो जाती है। अधस् अधस् में पूर्व सकार को रुत्व, उसको उत्व और गुण एकादेश होकर अधोधस् बना है। अतः अधोधस् यह आम्रेडितान्त अधस् शब्द है। इसके योग में लोक शब्द में ''**उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।**'' श्लोकवार्तिक से द्वितीयाविभक्ति होकर '**अधोऽधो लोकं हरिः**' वाक्य सिद्ध हो जाता है।

(4) ततोऽन्यत्रापि द्वितीया दृश्यते। उपरोक्त स्थानों से अन्यत्र भी द्वितीया विभक्ति का विधान होती है। उपपदविभक्ति में कर्मसंज्ञा की आवश्यकता नहीं है, सीधे विभक्ति का विधान होता है। जैसे आगे वार्तिकों के द्वारा विधान किया जा रहा है –
''**अभितःपरितःसमया–निकषा–हा–प्रति–योगेऽपि**''। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थ :– अभितः, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण :– अभितः कृष्णम् (कृष्ण के दोनों ओर)। अभितः – अभि शब्द से ''**पर्यभिभ्यां च**'' सूत्र से तसिल प्रत्यय होकर बनता है। अभितः के योग में कृष्ण ''**अभितःपरितःसमया–निकषा–हा–प्रति–योगेऽपि**'' वार्तिक से द्वितीयाविभक्ति होकर अभितः कृष्णं बनता है। इसी प्रकार से **परितः कृष्णम, ग्रामं समया, निकषा लंकाम्, हा कृष्णाभक्तम् और बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्** इत्यादि प्रयोग भी सिद्ध होते हैं।

सूत्र – अन्तराऽन्तरेणयुक्ते 2/3/4
वृत्ति :– आभ्यां योगे द्वितीया। अन्तरा त्वां मां हरिः। अन्तरेण हरिं न सुखम्।
पदविश्लेषण :– अन्तराश्च अन्तरेणश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वोऽन्तरान्तरेणौ, ताभ्यां युक्तम्, अन्तरान्तरेणयुक्तम्, तस्मिन् अन्तरान्तरेणयुक्ते, तृतीयातत्पुरुषसमासः। अन्तराऽन्तरेणयुक्ते सप्तम्येकवचनान्तम्।
सूत्रार्थ :– अन्तरा और अन्तरेण इन शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। अन्तरा शब्द के योग में सम्बन्ध में षष्ठी प्राप्त है, उसका प्रकृतसूत्र से बाध होता है। **अन्तरा (मध्य)** तथा **अन्तरेण (बिना)** ये दो अव्यय शब्द हैं। अन्तरा शब्द अव्यय एवं आबन्त उभयविध है तथा अन्तरेण शब्द अव्यय एवं तृतीयान्त है, परन्तु यहाँ दोनों परस्पर साहचर्य से दोनों ही अव्यय गृहीत होते हैं, तद्भिन्न नहीं।

उदाहरण :– अन्तरा त्वां मां हरिः (तुम्हारे और मेरे मध्य में हरि हैं)। यहॉ मध्यवाचक अन्तरा शब्द के योग में युष्मद् और अस्मद् शब्द से षष्ठी को बाधकर **''अन्तराऽन्तरेणयुक्ते''** सूत्र से द्वितीया विभक्ति हो होकर त्वाम्, माम् बनता है। **अन्तरेण हरिं न सुखम् (हरि के बिना सुख नहीं है)।** यहॉ वर्जनार्थक एनप् प्रत्ययान्त अन्तरेण शब्द के योग में हरि शब्द से षष्ठी को बाधकर **''अन्तराऽन्तरेणयुक्ते''** सूत्र से द्वितीया विभक्ति हो होकर अन्तरेण हरिं न सुखम् बनता है।

सूत्र – कर्मप्रवचनीयाः 1/4/83
वृत्ति :– इत्यधिकृत्य

पदविश्लेषण :– कर्मप्रवचनीयाः इति प्रथमाबहुवचनान्तमेकपदात्मकं सूत्रम्। कर्म–क्रियां प्रोक्तवन्तः–कथिवन्तः इति कर्मप्रवचनीयाः।
सूत्रार्थ :– इससे आगे के सूत्र कर्मप्रवचनीय के अधिकार से सम्पन्न होकर कार्य करते हैं। यह संज्ञासूत्र तथा अधिकारसूत्र दोनों है। अष्टाध्यायीक्रम में इस सूत्र से लेकर **''विभाषा कृञि''** 1/4/94 से पूर्व तक इसका अधिकार है। प्रकृत, सूत्र से आगे जिस–जिसका कथन किया जायेगा, उस उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होगी।
कर्म को कहने के कारण इन्हें कर्मप्रवचनीय यह अन्वर्थ नाम प्राप्त है। जिन्होंने कर्म अर्थात् क्रिया को कहा है, उन्हें कर्मप्रवचनीय कहते हैं।

सूत्र – अनुर्लक्षणे 1/4/84
वृत्ति :– लक्षणे द्योत्येऽनुरुक्तसंज्ञः स्यात्। गत्युपसर्गसंज्ञापवादः।
पदविश्लेषण :– अनुः प्रथमान्तं, लक्षणे सप्तम्यन्तम्। कर्मप्रवचनीयाः का अधिकार है। लक्षण यहॉ भावप्रधान निर्देश है। अतः 'लक्ष्यलक्षणभावरूपे सम्बन्धे' यह अर्थ निष्पन्न होता है।
सूत्रार्थ :– लक्षण द्योत्य रहते 'अनु' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यहाँ पर कर्मप्रवचनीय संज्ञा (विधेय) और अनु संज्ञी (उद्देश्य) है। अनु की निपातसंज्ञा भी होती है। उसके फलस्वरूप उसकी **''स्वरादिनिपातमव्ययम्''** से अव्ययसंज्ञा होने से उससे विहित सुप् प्रत्यय का **''अव्ययादाप्सुपः''** से लुक् हो जाता है। आगे **''लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः''** सूत्र से लक्षणादि अर्थ द्योत्य होने पर अनु की पुनः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा कही गयी है। यहॉ लक्षण शब्द का तात्पर्य विशेष हेतु का होना अभिलक्षित है। **लक्ष्यते अनेन इति लक्षणम्।** केवल चिह्न मात्र अर्थ तो यहॉ विवक्षित नहीं है। अतः लक्षण अर्थ में हेतु अर्थ भी निहित रहता है।

गत्युपसर्गसंज्ञापवादः। यह कर्मप्रवचनीयसंज्ञा गति और उपसर्ग संज्ञा का अपवाद है। फलतः उपसर्गसंज्ञाजनित षत्व आदि कार्य नहीं होते हैं और गतिसंज्ञाजनित अनुदात्तादि स्वर नहीं होते।

सूत्र – कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया 2/3/8
वृत्ति :– एतेन योगे द्वितीया स्यात्। पर्जन्यो जपमनुप्रावर्षत्। हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः। परापि हेतौ तृतीया अनेन बाध्यते। **लक्षणेत्थम्भूत** ..... इत्यादिना सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात्।
पदविश्लेषण :– कर्मप्रवचनीयेन युक्तं कर्मप्रवचीययुक्तं, तस्मिन् कर्मप्रवचनीययुक्ते, तृतीयातत्पुरुषः। कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तम्यन्तं, द्वितीया प्रथमान्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ :– कर्मप्रवचनीय–संज्ञक शब्द के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण :– जपमनु प्रावर्षत् (पर्जन्यः)। वर्षा कब हुई? इस प्रश्न में यह उत्तर है– जपम् अनु प्रावर्षत् अर्थात् जप होते ही वर्षा हो गयी। हेतुभूत जप ही लक्षण है, क्योंकि जप होते ही वर्षा हुई। हेतुस्वरूप जप में वर्षण लक्षित होता है। जप–समाप्ति के पूर्व वर्षा होने की सूचना अनु से द्योतित होती है। कर्म प्रोक्तवन्तः के अनुसार यहाँ अनु के द्वारा जप होना प्रोक्त होता है। इसके साथ ही अनु से वर्तमान काल में किसी क्रियाविशेष का बोध नहीं होता। इसके अतिरिक्त अनु से किसी क्रिया का आक्षेप भी नहीं होता। आक्षेप मानने पर क्रिया के साथ सम्बन्ध होने पर कोई विभक्ति प्राप्त होगी। इस तरह यहाँ पर जप लक्षण है तथा वर्षा लक्ष्य। इस तरह लक्ष्यलक्षण का सूचक है अनु। वर्षा होने में हेतु जप है। उससे वर्षण होता है। अतः ''**अनुर्लक्षणे**'' सूत्र के द्वारा अनु की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होकर ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से अनु शब्द के योग में जप शब्द में द्वितीया विभक्ति होकर '**जपम् अनु प्रावर्षत्**' बन जाता है।

परापि हेतौ तृतीया अनेन बाध्यते। लक्षणेत्थम्भूत... इत्यादिना सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात्। यहाँ ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीया तथा ''**हेतौ**'' से तृतीया इन दोनों की युगपत् प्राप्ति होने पर परसूत्र होने के कारण ''**विप्रतिषेधे परं कार्यम्**'' के नियम से परकार्य तृतीया विभक्ति होनी चाहिये थी, किन्तु इस द्वितीया से उक्त तृतीया का बाध किया जाता है। जिज्ञासा होती है कि परकार्य को पूर्वकार्य कैसे बाध सकता है? तब कहा जाता है कि सामान्यतः तो यद्यपि नहीं बाध सकता किन्तु यहाँ ''**लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः**'' सूत्र से अनु शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा सिद्ध होते हुये पुनः ''**अनुर्लक्षणे**'' से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा का विधान जो किया गया है, तत्सामर्थ्य से परा अपि तृतीया पूर्वद्वितीया से बाधित हो जाती है।

सूत्र – तृतीयार्थे 1/4/85
वृत्ति :– अस्मिन्द्योत्येऽनुक्तसंज्ञः स्यात्। नदीमन्वसिता सेना। नद्या सह सम्बद्धेत्यर्थः। षिञ् बन्धने क्तः।
पदविश्लेषण :– तृतीयाया अर्थस्तृतीयार्थस्तस्मिन् तृतीयार्थे, षष्ठीतत्पुरुषः। तृतीयार्थे सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ :– तृतीया का अर्थ द्योत्य होने पर 'अनु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

उदाहरण :– '**नदीमन्वसिता सेना**' (सेना नदी के साथ–साथ लगी हुयी है)। यहॉ पर 'अनु' का अर्थ – सह अथवा साथ है। प्रस्तुत उदाहरण में अनु के द्वारा सहभाव द्योतित हो रहा है। सह का योग हो अथवा सह–शब्द अध्याहृत हो तो दोनों अवस्थाओं में ''**सहयुक्तेऽप्रधाने**'' सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। अतः अनु यहॉ तृतीया के अर्थ में प्रयुक्त है। यहॉ तृतीयार्थ द्योतक अनु की ''**तृतीयार्थे**'' सूत्र के द्वारा कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाने पर उसके योग में नदी शब्द में ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' से द्वितीया विभक्ति होकर 'नदीम् अन्ववसिता सेना' वाक्य सिद्ध हो जाता है। वाक्य का अर्थ है – **नद्या सह सम्बद्धा इत्यर्थः**। अर्थात् नदी के साथ सम्बद्ध सेना है। अन्ववसिता क्रियावाची शब्द अनु और अव उपसर्ग पूर्वक 'षिञ्' से क्त प्रत्यय होकर बना है।

सूत्र – हीने 1/4/86

वृत्ति :– हीने द्योत्येऽनुः प्राग्वत्। अनु हरिं सुराः। हरेर्हीना इत्यर्थः।

सूत्रार्थ :– हीन अर्थ के द्योत्य रहते 'अनु' की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है।

उदाहरण :– अनु हरिं सुराः (देवगण हरि से हीन/न्यून हैं)। यहॉ पर दो शब्दों के बीच हीनता अथवा उत्कृष्टता का व्यवहार हो रहा है। इनमें उत्कृष्टता हरि में है तथा हीनता सुरों में है। प्रकृत में 'अनु' शब्द से हीन अर्थ द्योत्य है। अतः उसकी ''**हीने**'' सूत्र के द्वारा कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। अनु कर्मप्रवचनीय से युक्त हरि शब्द में ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर '**अनु हरिं सुराः**' वाक्य बन जाता है। वाक्य में जिससे उत्कृष्टता प्रतिपादित होती है। उसी से द्वितीया विभक्ति आती है, हीन से नहीं।

सूत्र – उपोऽधिके च 1/4/87

वृत्ति :– अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्यव्ययं प्राक्संज्ञं स्यात्। अधिके सप्तमी वक्ष्यते। हीने उप हरिं सुरा।

पदविश्लेषण :– उपः प्रथमान्तम्, अधिके सप्तम्यन्तं चाव्ययमिति।

सूत्रार्थ :– अधिक और हीन इन दो अर्थों के द्योत्य रहते 'उप' इस अव्यय की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है।

अधिके सप्तमी वक्ष्यते। प्रकृत सूत्र में 'हीन' अर्थ का ही उदाहरण दिया जा रहा है। अधिक अर्थ में ''**यस्मादधिक यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी**'' सूत्र से सप्तमी विभक्ति कही जायेगी। इस तरह उप शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने पर हीन अर्थ में द्वितीया और अधिक अर्थ में सप्तमी होती है।

उदाहरण :– '**उप हरिं सुराः**' **(देवगण हरि से हीन (न्यून) हैं)**। यहॉ 'उप' शब्द से हीन अर्थ द्योत्य है। अतः उसकी ''**उपोऽधिके च**'' सूत्र से द्वारा कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने पर कर्मप्रवचनीय से युक्त हरि शब्द में ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर '**उप हरिं सुराः**' वाक्य बन जाता है।

सूत्र – लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः 1/4/90

वृत्ति :– एष्वर्थेषु विषयभूतेषु प्रत्यादय उक्तसंज्ञाः स्युः। लक्षणे वृक्षं प्रति, परि, अनु वा विद्योतते विद्युत्। इत्थम्भूताख्याने–भक्तो विष्णुं प्रति, परि अनु वा। भागे–लक्ष्मीर्हरिं प्रति, परि, अनु वा। हरेर्भाग इत्यर्थः। वीप्सायाम् वृक्षं वृक्षं प्रति, परि अनु वा सिंचति। अत्रोपसर्गत्वाभावान्न षत्वम्। एषु किम्? परिषिंचति।

पदविश्लेषण :– कंचित्प्रकारं प्राप्तः इत्थम्भूतः, इत्थम्भूतस्य आख्यानम् इत्थम्भूताख्यानम्, षष्ठीतत्पुरुषसमासः। लक्षणं च इत्थम्भूताख्यानं च भागश्च वीप्सा च लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सास्तासु लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु। प्रतिश्च परिश्च अनुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु सप्तमीबहुवचनान्तं, प्रतिपर्यनवः प्रथमान्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ :– लक्षण, इत्थम्भूत, आख्यान, भाग और वीप्सा अर्थों के विषय होने पर प्रति, परि और अनु अव्यय शब्दों की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है।

लक्षण का अर्थ है – बोधक या ज्ञापक।

इत्थम्भूत का अर्थ है – वह इस प्रकार का है।

आख्यान का अर्थ है – कथन। परिस्थिति का कथन इत्थम्भूताख्यान कहलाता है।

भाग का अर्थ है – स्वीकार्य अंश।

वीप्सा का अर्थ है – सम्पूर्णतया व्याप्त होना अर्थात् सबके साथ सम्बन्ध करने की इच्छा।

उदाहरण :– **लक्षण :– वृक्षं प्रति, परि, अनु वा विद्योतते विद्युत् (वृक्ष की ओर बिजली चमक रही है)**। यहाँ पर तीन वाक्य बनते हैं – वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत, वृक्षं परि विद्योतते विद्युत् और वृक्षं अनु विद्योतते विद्युत्।

वृक्षं प्रति परि विद्योतते विद्युत् – यहाँ विद्युत् के द्वारा प्रकाशमान वृक्ष को देखकर विद्युत् का बोध होता है। अतः लक्षण अर्थ हुआ। इसलिए प्रति की ''**लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने पर उसके योग में वृक्ष शब्द में ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीयाविभक्ति होकर वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् वाक्य सिद्ध होता है। इसी तरह वृक्षं परि विद्योतते विद्युत् और वृक्षम् अनुविद्योतते विद्युत् भी वाक्य सिद्ध होते हैं।

इत्थम्भूताख्यान :– भक्तो विष्णुं प्रति, परि, अनु वा (भक्त विष्णु की भक्ति से युक्त है)। यहाँ पर तीन वाक्य बनते हैं – भक्तो विष्णुं प्रति, भक्तो विष्णुं परि और भक्तो विष्णुं अनु।

भक्तो विष्णुं प्रति – यहाँ भक्तिरूप विशेष विधि को प्राप्त होने से भक्त इत्थम्भूत है। अर्थात् विष्णु और भक्ति का विषयविषयिभाव सम्बन्ध है। इसका कथन ही इत्थम्भूताख्यान हुआ। इसलिए प्रति की ''**लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने

पर उसके योग में विष्णु शब्द में ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीयाविभक्ति होकर भक्तो विष्णु प्रति वाक्य सिद्ध होता है। इसी तरह भक्तो विष्णुं परि और भक्तो विष्णुं अनु भी वाक्य सिद्ध होते हैं।

भाग :– लक्ष्मीर्हरिं प्रति परि अनु वा (लक्ष्मी हरि की स्वीकार्य अंश भाग हैं)। यहाँ पर तीन वाक्य बनते हैं – लक्ष्मीर्हरिं प्रति, लक्ष्मीर्हरिं परि और लक्ष्मीर्हरिमनु।

लक्ष्मीर्हरिं प्रति। यहाँ पर लक्ष्मी और हरि में स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है। यही भाग का विषय है। इसलिए प्रति की ''**लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने पर उसके योग में हरि शब्द में ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीयाविभक्ति होकर लक्ष्मीर्हरिं प्रति वाक्य सिद्ध होता है। इसी तरह लक्ष्मीर्हरिं परि और लक्ष्मीर्हरिमनु भी वाक्य सिद्ध होते हैं।

वीप्सा :–वृक्षं वृक्षं प्रति, परि, अनु वा सिंचति (प्रत्येक वृक्ष को सींचता है)। यहाँ पर तीन वाक्य बनते हैं – वृक्षं वृक्षं प्रति सिंचति, वृक्षं वृक्षं परि सिंचति, वृक्षं वृक्षं अनु सिंचति।

वृक्षं वृक्षं प्रति सिंचति। यहाँ पर वीप्सा अर्थ में ''**नित्यवीप्सयोः**'' सूत्र से वृक्ष शब्द को द्वित्व होता है और प्रति–शब्द से अभिव्याप्ति सूचित होती है। इसलिए प्रति की ''**लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने पर उसके योग में वृक्ष शब्द में ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीयाविभक्ति होकर वृक्षं वृक्षं प्रति वाक्य सिद्ध होता है। कर्मप्रचवनीयसंज्ञा होने पर उपसर्गसंज्ञा का बाध होता है। अतः सिंचति में उपसर्गनिमित्तक षत्व नहीं होता यही कर्मप्रवचनीय संज्ञा फल है। इसी प्रकार से वृक्षं वृक्षं परि सिंचति, वृक्षं वृक्षं अनु सिंचति के विषय में भी समझना चाहिये।

एषु किम? परिषिंचति। प्रकृतसूत्र में ''**लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु**'' पद के ग्रहण का क्या फल है? इसका प्रयोजन है कि – लक्षण, इत्थम्भूताख्यान, भाग, वीप्सा अर्थ विषयभूत होने पर ही प्रति, परि, अनु शब्दों की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होगी और ये नहीं होंगे तो नहीं होगी। अतः '**परिषिंचति वृक्षम्**' में लक्षण आदि कोई भी अर्थ विवक्षित नहीं है। अतः परि की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा नहीं हुई। उपसर्गत्व के रहने से ''**उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषंजष्वंजाम्**'' सूत्र से सकार को मूर्धन्य षकार आदेश होकर परिषिंचति बन जाता है।

सूत्र – अभिरभागे 1/4/91

वृत्ति :– भागवर्जे लक्षणादावभिरुक्तसंज्ञः स्यात्। हरिमभि वर्तते। भक्तो हरिमभि। देवं देवमभि सिंचति। अभागे किम्? यदत्र ममाभिष्यात्तद्दीयताम्।

पदविश्लेषण :– अभिः प्रथमान्तम्, अभागे सप्तम्यन्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ :– लक्षण, इत्थम्भूताख्यान और वीप्सा इन अर्थों के विषयभूत होने पर अभि–शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, परन्तु भाग अर्थ में उक्त संज्ञा नहीं होती है।

उदाहरण :– हरिमभि वर्तते (हरि की ओर है)। प्रस्तुत उदाहरण में '**अभि**' शब्द को लक्षण अर्थ का विषय बना गया है अर्थात् हरि की अनुकूलता ही लक्ष्य का ज्ञापक (लक्षक) है। अतः अभि शब्द की ''**अभिरभागे**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हुयी। ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीयाविभक्ति होकर '**हरिमभि वर्तते**' वाक्य सिद्ध होता है। यह लक्षण का उदाहरण है।

भक्तो हरिमभि (भक्त हरि की भक्ति से युक्त है)। प्रस्तुत उदाहरण में भक्त का प्रकार बताया गया। अतः यह इत्थम्भूताख्यान का विषय बना। '**अभि**' शब्द की ''**अभिरभागे**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हुयी। ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीयाविभक्ति होकर '**भक्तो हरिमभि**' वाक्य सिद्ध होता है।

देवं देवम् अभिसिंचति (प्रत्येक देव को स्नान कराता है)। यहॉ पर अभि शब्द को वीप्सा अर्थ का विषय बना गया है। प्रत्येक के साथ सेचन सम्बन्ध की इच्छा के कारण वीप्सा है। इसलिए '**अभि**' शब्द की ''**अभिरभागे**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने से उपसर्गसंज्ञा का बाध होता है। उपसर्गस्थ निमित्त से परे सकार को षकार नहीं होता है। देव शब्द में द्वितीया विभक्ति तो ''**कर्तुरीप्सिततमं कर्म**'' से कर्मसंज्ञा होकर कर्मणि द्वितीया से ही हो जाती है। इस तरह **देवं देवमभि सिंचति** वाक्य सिद्ध हो जाता है।

अभागे किम्? यदत्र ममाभिष्यात् तद् दीयताम् (इसमें जो मेरा भाग/हिस्सा है, उसे मुझे दे दीजिये)। प्रकृतसूत्र में अभागे ग्रहण क्यों किया और इसका प्रयोजन क्या है? उत्तर – पूर्वसूत्र अर्थात् ''**इत्थम्भूत....**'' में उक्त लक्षण आदि सभी अर्थों में '**अभि**' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो किन्तु पूर्वसूत्र के ही भाग अर्थ में '**अभि**' की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा न हो, इसके लिये प्रकृतसूत्र में भाग का निषेध करने के लिये अभागे की आवश्यकता है। जैसे कि – '**यदत्र मम अभिष्यात् तद् दीयताम्**' इस वाक्य में जो '**अभि**' शब्द '**स्यात्**' क्रिया से युक्त है, वह भाग अर्थ का ही द्योतन कर रहा है। ऐसी स्थिति में कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाने से उपसर्गसंज्ञा का बाध हो जाता और स्यात् के सकार को षत्व न हो पाता। अभागे शब्द के ग्रहण से भागार्थ में विद्यमान '**अभि**' की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा नहीं हुयी अर्थात् उपसर्गसंज्ञा का बाध नहीं हुआ अपितु उपसर्गसंज्ञा होकर उससे परे सकार को ''**उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः**'' सूत्र से षत्व होकर **यदत्र ममाभिष्यात् तद् दीयताम्** वाक्य सिद्ध होता है। अन्यथा अभिस्यात् बनता।

सूत्र – अधिपरी अनर्थकौ 1/4/93
वृत्ति :– उक्तसंज्ञौ स्तः। कुतोऽध्यागच्छति? कुतः पर्यागच्छति? गतिसंज्ञाबाधात् 'गतिर्गतौ' (सू 3977)
इति निघातो न।

पदविश्लेषण :– अधिश्च परिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वोऽधिपरी। न विद्यतेऽर्थो ययोस्तौ अनर्थकौ, बहुव्रीहिसमासः। अधिपरी प्रथमाद्विवचनान्तम्, अनर्थकौ प्रथमाद्विवचनान्तम् द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ :– निरर्थक–किसी विशेष अर्थ के वाचक न होने पर अर्थात् धात्वर्थमात्र का बोधक होने पर अधि तथा परि ये दोनों अव्यय कर्मप्रवचनीयसंज्ञक होते हैं। 'अधि' और 'परि' ये जब किसी धातु के पहले लगें। इनके लगने से धातु के अर्थ में कोई परिवर्तन न आये तो अनर्थक माने जाते हैं। वैसे प्रादि अनर्थक ही होते हैं अर्थात् किसी अर्थ के वाचक नहीं होते किन्तु अर्थ के द्योतक होते हैं। तथापि अर्थद्योतकता भी न रहे तो यहाँ पर उन्हें अनर्थक कहा गया है।

उदाहरण :– **कुतोऽध्यागच्छति (कहाँ से आता है)**। यहाँ आङ्पूर्वक 'गम्' धातु का आना अर्थ है और 'अधि' के लगने के बाद '**अध्यागच्छति**' का भी आना ही अर्थ है। अधि के लगने पर अन्य किसी विशेष अर्थ का द्योतन नहीं हो रहा है। अतः यहाँ पर '**अधि**' अनर्थक है। उक्त वाक्य में अधि शब्द की ''**अधिपरी अनर्थकौ**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है। यद्यपि अधि की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने से तत्प्रयुक्त कारक में कोई फल नहीं है तथापि कर्मप्रवचनीय संज्ञा से गति संज्ञा का बाध होता है। इसलिए ''**गतिर्गतौ**'' सूत्र से होने वाला निघातस्वर नहीं होता। यही यहाँ कर्मप्रवचनीयसंज्ञा का फल है। 'कुतः' अव्यय है, उसमें किसी विभक्ति की आशंका नहीं है।

कुतः पर्यागच्छति (कहाँ से आता है)? यहाँ पर भी आङ्पूर्वक गम् धातु का आना अर्थ है और परि के लगने के बाद '**पर्यागच्छति**' का भी आना ही अर्थ है। परि के लगने पर अन्य किसी विशेष अर्थ का द्योतन नहीं हो रहा है। अतः यहाँ पर परि अनर्थक है। उक्त वाक्य में परि शब्द की ''**अधिपरी अनर्थकौ**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाती है। कर्मप्रवचनीय संज्ञा से गति–संज्ञा का बाध होने के कारण ''**गतिर्गतौ**'' सूत्र से होने वाला निघातस्वर नहीं हुआ।

सूत्र – सुः पूजायाम् 2/4/94
वृत्ति :– सुसिक्तम्। सुस्तुतम्। अनुपसर्गत्वान्न षः। पूजायाम् किम्? सुषिक्तं किं तवात्र। क्षेपोऽयम्।
पदविश्लेषण :– सुः प्रथमान्तं पूजायां सप्तम्यन्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ :– पूजा अर्थ में वर्तमान 'सु' शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है।

उदाहरण :– सुसिक्तम् (अच्छी तरह सींचा अर्थात् विधिपूर्वक अभिषेक किया)। यहाँ '**सु**' प्रशंसा अर्थ का द्योतक है। अतः ''**सुः पूजायाम्**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाती है। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने के पूर्व उपसर्गसंज्ञा प्राप्त थी उसका बाध होता है। इसलिए उपसर्गत्वाभाव में उससे परे षिच् (सिच्) धातु के सकार को ''**उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषञ्जष्वञ्जाम्**'' सूत्र से विधीयमान मूर्धन्य षकार आदेश नहीं हुआ। '**ष्टुञ्**' स्तुतौ धातु में ''**धात्वादेः षः सः**'' से षकार को सकारादेश

और ''**निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः**'' के नियमानुसार टकार का निमित्त षकार का नहीं रहने के कारण टकार के तकार रूप में आ जाने से '**स्तु**' धातु बन जाती है और उससे क्त प्रत्यय होकर '**स्तुतम्**' बना है। प्रकृतसूत्र के अभाव में उपसर्गसंज्ञा होकर षत्व होने पर तकार को ष्टुत्व होकर सुष्टुतम् ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता है।

पूजायाम् किम्? सुषिक्तं किं तवात्र। क्षेपोऽयम्। प्रकृतसूत्र में '**पूजायाम्**' पद का क्या प्रयोजन है? उत्तर है कि – प्रशंसा अर्थ में वर्तमान सु अव्यय की ही कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है अन्य अर्थ में नहीं होती। '**सुषिक्तं किं तवात्र**'? (वाह, तुमने खूब सींचा) (किन्तु तुम्हारा सींचना बेकार है)। वाक्य में सु का निन्दा अर्थ होने के कारण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा नहीं होती। अतः उपसर्गसंज्ञा हो जाने से ''**उपसर्गात्सुनोतिसुवति**'' सूत्र से षत्व होकर सुषिक्तम् बन जाता है। इसी तरह सुष्टुतं किं तवात्र में भी समझना चाहिये। इन दोनों वाक्यों में अव्यय निन्दार्थ का द्योतक है। क्षेपः निन्दा अर्थ ही विद्यमान है।

सूत्र – अतिरतिक्रमणे च 1/4/95
वृत्ति :– अतिक्रमणे पूजायां च अतिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञः स्यात्। अति देवान्कृष्णः।
पदविश्लेषण :– अतिः प्रथमान्तं, अतिक्रमणे सप्तम्यन्तं, चाव्ययमिदं सूत्रं त्रिपदात्मकमस्ति।
सूत्रार्थ :– अतिक्रमण तथा प्रशंसा अर्थों में वर्तमान अति अव्यय की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

उदाहरण :– अति देवान् कृष्णः (कृष्ण **देवों से बढकर है)**। यहाँ अति शब्द से अतिक्रमण तथा पूजा ये दोनों अर्थ विवक्षित हैं। अतः अति की ''**अतिरतिक्रमणे च**'' से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है और उसके योग में देव शब्द में ''**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर '**अति देवान् कृष्णः**' वाक्य सिद्ध हो जाता है। **वृत्ति**

सूत्र – अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु 1/4/96
वृत्ति :– एषु द्योत्येष्वपिरुक्तसंज्ञः स्यात्। सर्पिषोऽपि स्यात्। अनुपसर्गत्वान्न षः। सम्भावनायां लिङ्। तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृदौर्लभ्यप्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपिशब्दः स्यादित्यनेन सम्बध्यते। 'सर्पिषः इपि षष्ठी त्वपिशब्दबलेन गम्यमानस्य बिन्दोरवयवावयविभावसम्बन्धे। इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थद्योतकता नाम। द्वितीया तु नेह प्रवर्तते। सर्पिषो बिन्दुना योगो न त्वपिनेत्युक्तत्वात्। अपि स्तुयाद्विष्णुम् सम्भावनं शक्युत्कर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः। अपि स्तुहि–अन्वसर्गः कामचारानुज्ञा। धिग्देवदत्तम्। अपि स्तुयाद् वृषलम्– गर्हा। अपि सिंच, अपि स्तुहि समुच्चये।

पदविश्लेषण :– पदार्थश्च सम्भावनं च अन्ववसर्गश्च गर्हा च समुच्चयश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वसमासः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयाः, तेषु

पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु। अपिः प्रथमान्तं, पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु सप्तम्यन्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ :– पदार्थ, सम्भावन, अन्ववसर्ग, गर्हा तथा समुच्चय अर्थों के द्योतन में अपि इस अव्यय की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है।

प्रकृतसूत्र के द्वारा कुछ विशेष अर्थों को अभिलक्षित करके **'अपि'** शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा का विधान है।
पदार्थ :– पदस्यार्थः पदार्थः यह व्युत्पत्ति परक अर्थ न होकर यहॉ पर वाक्य में अप्रयुक्त किसी भिन्न पद के अर्थ को भी पदार्थ कहते हैं। वाक्यार्थ को स्पष्ट करने के लिए यदा कदा ऐसे पद के अर्थ का अध्याहार किया जाता है, जो वाक्य में साक्षात् व्यक्त नहीं होता है। इस अध्याहृत पद के अर्थ को पदार्थ कहा जाता है। प्रकृतसूत्र में उसी तरह के पदार्थ का ग्रहण है।

सम्भावन :– शक्ति के उत्कर्ष को प्रकट करने के लिये बढा–चढाकर कहना सम्भावन कहलाता है। 'सम्भावनं शक्त्युकर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः'।

अन्ववसर्ग :– अन्ववसर्ग का अर्थ है – कमाचार । अर्थात् इच्छापूर्वक काम करने की अनुमति देना। इच्छा हो तो करो और न हो तो न करो।

गर्हा :– गर्हा अर्थात् निन्दा करना।

समुच्चय :– का अर्थ है – समूह अर्थात् अनेक पदार्थों को एकत्रित करना।

उदाहरण :– **सर्पिषोऽपि स्यात् (थोडा सा घी हो सकता है अथवा घी तो नहीं किन्तु घी की बूंद हो सकती है)**। यहॉ पर भोजनकर्ता को थोडा घी दिया गया और उसके उपहासस्वरुप यह कथन है। पदार्थ के अर्थ में विद्यमान 'अपि' शब्द की ''**अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा उपसर्गसंज्ञा की बाधिका है। अतः उपसर्ग न होने के कारण स्यात् के सकार को ''**उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः**'' सूत्र से मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ। **अनुपसर्गत्वान्न षः। सम्भावनायां लिङ्**। **'सर्पिषोऽपि स्यात्'** इस वाक्य में **'अपि स्यात्'** यह तो तिङन्त पद है। यहॉ पर 'अस' भुवि धातु से ''**सम्भावनायां लिङ्**'' सूत्र के द्वारा सम्भावना अर्थ में लिङ् लकार हुआ है। स्यात् लिङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।

तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृदौर्लभ्यप्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपि शब्दः स्यादित्यनेन सम्बध्यते। वाक्य में कर्ता और क्रिया का होना अनिवार्य है। **'सर्पिषोऽपि स्यात्'** इस वाक्य में क्रिया तो स्यात् है किन्तु कर्ता कौन सा पद है? इस जिज्ञासा के उत्तर में यह कहा गया कि क्रिया

के साथ अपि का सम्बन्ध होने से अपि शब्द ही कर्ता है। अब प्रश्न आता है कि अव्यय अपि शब्द असत्ववाची है और वह कर्ता कैसे बन सकता है? इस पर कहा गया कि यहॉ अपि शब्द के द्वारा अप्रयुक्त शब्द के अर्थ का द्योतन किया गया है। प्रकृतवाक्य में वह अप्रयुक्त शब्द का अर्थ क्या है? उत्तर :– घी का अभाव। अर्थात् दुर्लभताप्रयुक्त दौर्लभ्य का द्योतन करने वाला अपि शब्द ही कर्ता है और उससे अतिशय दुर्लभता का ज्ञान हो रहा है। अतः वही घी की दुर्लभता ही सम्भावनात्मक सत्ता में कर्ता है। इस तरह अपि शब्द से जिस अप्रयुक्त शब्द के अर्थ का द्योतन हो रहा है, वही उक्त वाक्य का कर्ता है। अपि शब्द के द्वारा किस अप्रयुक्त शब्द के अर्थ का द्योतन हो रहा है? घी की बूंद अर्थ का द्योतन हो रहा है। इस तरह अप्रयुक्त बिन्दु शब्द के अर्थ की द्योतकता अपि शब्द में होने के कारण इसे पदार्थद्योतकता कहते हैं।

अब प्रश्न आता है कि यदि अपि शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने के बाद उसके योग में सर्पिष् शब्द से द्वितीया होनी चाहिये, षष्ठी कैसे हुयी और सर्पिषः कैसे बना। इसका उत्तर मूलकार दे रहे हैं – **सर्पिषः इति षष्ठी त्वपिशब्दबलेन गम्यमानस्य बिन्दोरवयवावयविभावसम्बन्धे।** अर्थात् सर्पिषः पद में तो अपि शब्द के द्वारा गम्यमान बिन्दु के साथ सर्पिष् शब्द का अन्वय करके सर्पिषः बिन्दुः इस तरह अवयव बिन्दु के साथ सर्पिस् मानकर अवयवावयविभाव सम्बन्ध में ''**शेषे**'' सूत्र के द्वारा षष्ठी विभक्ति हुयी है। अतः सर्पिषः यह षष्ठ्यन्त प्रयोग हो जाता है।

अपि स्तुयाद् विष्णुम् (वह विष्णु की स्तुति कर सकेगा)? यहॉ अत्युक्ति है। इसका भाव यह है कि विष्णु की स्तुति करना सम्भव नहीं है, श्री विष्णु भगवान् वाक् और मन से अगोचर हैं। तो वाक् के द्वारा उनकी स्तुति कैसे सम्भव है? सम्भावन अर्थ का द्योतन करने के कारण 'अपि' शब्द की प्रकृतसूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसंज्ञा का बाध हो जाता है। अतः अपि स्तुयात् में ''**उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषंजष्वजाम्**'' सूत्र से उपसर्ग से परे सकार को होने वाला षकारादेश नहीं होता। अतः अपि स्तुयात् ही बनता है।

अब आगे अन्ववसर्ग का उदाहरण दे रहे हैं।

अपि स्तुहि (चाहो तो स्तुति करो अथवा न करो, तुम्हारी इच्छा)। यहॉ कामचार अर्थ का प्रकाशन 'अपि' शब्द के द्वारा हो रहा है। इच्छानुसार अर्थ को प्रकाशित करने के कारण अन्ववसर्ग अर्थ के द्योत्य होने से अपि शब्द की ''**अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु**'' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसंज्ञा का बाध हो जाता है। अतः अपि स्तुहि में ''उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषंजष्वजाम्'' सूत्र से उपसर्गस्य निमित्त से परे सकार को होने वाला षकारादेश नहीं होता। अतः अपि स्तुति ही बनता है।

धिग् देवदत्तम्, अपि स्तुयाद् वृषलम् (देवदत्त की धिक्कार है जो वृषल की स्तुति करता है)। यहाँ आचरण के कारण वृषल के निन्द्य होने से उसकी स्तुति करने में निन्दा अर्थ का बोध होता है। यहाँ गर्हा अर्थ को प्रकाशित करते हुये **'अपि'** शब्द की **''अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु''** सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसंज्ञा का बाध हो जाता है। अतः अपि स्तुयात् में **''उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषंजष्वजाम्''** सूत्र से उपसर्गस्य निमित्त से परे सकार को होने वाला षकारादेश नहीं होता। अतः **अपि स्तुयात्** ही बनता है। यहाँ पर स्तुयात् में 'स्तु' धातु से **''गर्हायां लडपिजात्वोः''** सूत्र से प्राप्त लट् लकार को परत्व और अन्तरंगत्व निमित्त से बाधकर **''सम्भावनायां लिङ्''** लकार हुआ है। यह गर्हा का उदाहरण है।

अपि सिंच, अपि स्तुहि – सींचो (अभिषेक करो) भी और स्तुति (पाठ) भी करो। यहाँ **'अपि'** शब्द के द्वारा दोनों कार्यों को करना रूप समुच्चय अर्थ का प्रकाशन हो रहा है। अतः अपि शब्द की **''अपि पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु''** सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसंज्ञा का बाध हो जाता है। अतः अपिसिंचति में **''उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेन– यसेधसिचषंजष्वंजाम्''** सूत्र से उपर्गस्थ निमित्त से परे सकार को होने वाला षकारादेश नहीं होता। अतः अपि सिंच और अपि स्तुहि इन दोनों वाक्यों में षत्वरहित रूप होते हैं। यह समुच्चयार्थ का उदाहरण है।

सूत्र – कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे 2/3/5

वृत्ति :– इह द्वितीया स्यात्। मासं कल्याणी। मासमधीते। मासं गुडधानाः। क्रोशं कुटिला नदी। क्रोशमधीते। क्रोशं गिरिः। अत्यन्तसंयोगे किम्? मासस्य द्विरधीते। क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः।

पदविश्लेषण :– कालश्च अध्वा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कालाध्वानौ, तयोः कालाध्वनोः। अन्तः विच्छेदः, तमतिक्रान्तः अत्यन्तः, अत्यन्तश्चासौ संयोगः अत्यन्तसंयोगस्तस्मिन् अत्यन्तसंयोगे, तत्पुरुषगर्भकर्मधारयसमासः। कालाध्वनोः षष्ठ्यन्तं अत्यन्तसंयोगे सप्तम्यन्तं द्विपदात्मकमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ :– अत्यन्तसंयोग के गम्यमान रहते काल–वाची और मार्ग–वाची शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है। जब गुण, क्रिया अथवा द्रव्य के साथ काल या मार्ग का सम्पूर्ण सम्बन्ध होता है, तब अत्यन्तसंयोग कहलाता है। जब कोई क्रिया कुछ समय तक लगातार होती रहे या कुछ दूरी तक होती रहे तब कालवाचक और मार्गवाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है। काल और अध्व का वह अविच्छिन्न संयोग गुण, क्रिया और द्रव्य इन तीनों में होता है।

उदाहरण :– मासं कल्याणी (मास पर्यन्त शुभकारी है)। प्रस्तुत उदाहरण में कालवाची मासशब्द है और कालवाचक का कल्याणी के साथ अत्यन्त संयोग है। अतः **''कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे''** सूत्र से कालवाची मास शब्द में द्वितीया हो जाने पर मासं कल्याणी वाक्य बनता है। यह कालवाचक शब्द का गुणवाचक शब्द के साथ अत्यन्तसंयोग का उदहारण है।

मासमधीते (महीने पर पढता है)। प्रस्तुत उदाहरण में कालवाची मासशब्द है और कालवाचक का अधीते क्रिया के साथ अत्यन्तसंयोग है। अतः ''**कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे**'' सूत्र से कालवाची मास शब्द में द्वितीया हो जाने पर 'मासमधीते' वाक्य बनता है। यह कालवाचक शब्द का क्रियावाचक शब्द के साथ अत्यन्तसंयोग का उदहारण है।

मासं गुडधानाः (महीने भर गुडमिश्रित धान्य खाता है)। प्रस्तुत उदाहरण में कालवाची मासशब्द है और कालवाचक का गुडधानाः के साथ अत्यन्त संयोग है। अतः ''**कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे**'' सूत्र से कालवाची मास शब्द में द्वितीया हो जाने पर मासं गुडधानाः वाक्य बनता है। यह कालवाचक शब्द का द्रव्यवाचक शब्द के साथ अत्यन्तसंयोग का उदहारण है।

क्रोशं कुटिला नदी (कोस भर टेढी नदी है)। प्रस्तुत उदाहरण में मार्गवाची क्रोश के साथ गुणवाचक कुटिल की निरन्तरता है। अतः मार्गवाची क्रोश शब्द में ''**कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर 'क्रोशम् कुटिला नदी' वाक्य बनता है। यह मार्गवाचक शब्द का गुणवाचक शब्द के साथ अत्यन्तसंयोग का उदहारण है।

क्रोशमधीते (कोसभर पढता है)। प्रस्तुत उदाहरण में मार्गवाची क्रोश के साथ क्रियावाची अधीते की निरन्तरता है। अतः मार्गवाची क्रोश शब्द में ''**कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर 'क्रोशम् अधीते' वाक्य बनता है। यह मार्गवाचक शब्द का क्रियावाचक शब्द के साथ अत्यन्तसंयोग का उदहारण है।

क्रोशं गिरिः (कोस भर पर्वत है)। प्रस्तुत उदाहरण में मार्गवाची क्रोश के साथ द्रव्यवाची पर्वत की निरन्तरता है। अतः मार्गवाची क्रोश शब्द में ''**कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे**'' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर 'क्रोशम् गिरिरस्ति' वाक्य बनता है। यह मार्गवाचक शब्द का द्रव्यवाचक शब्द के साथ अत्यन्तसंयोग का उदहारण है।

अत्यन्तसंयोगे किम्? मासस्य द्विरधीते। क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः। प्रकृतसूत्र जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि अत्यन्तसंयोगे पद का प्रयोजन क्या है? समाधान – प्रयोजन यह है कि कालवाची तथा मार्गवाची शब्दों के साथ क्रिया आदि की निरन्तरता होने पर ही तद्वाची शब्दों से द्वितीया होगी, निरन्तरता नहीं रहने पर द्वितीया नहीं होगी। जैसे कि **मासस्य द्विरधीते (महीने में केवल दो बार पढता है)** में अधीते क्रिया महीने में दो बार होने से इसमें निरन्तरता नहीं है। अतः द्वितीया नहीं हुयी, षष्ठी होकर मासस्य बन गया है।

क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः (कोस भर में किसी एक भाग में पर्वत है)। प्रकृतसूत्र के अत्यन्तसंयोगे पद का दूसरा उदाहरण बताया जा रहा है। यहाँ क्रोश के एकभाग में पर्वत होने के कारण निरन्तरता नहीं है। अतः द्वितीया नहीं हुयी, षष्ठी होकर क्रोशस्य बनता है। अतः द्वितीयाविभक्ति निरन्तरता रहने पर ही होती है।

7.4 सारांश

प्रस्तुत ईकाई में छात्रों के अध्ययन हेतु कारक प्रकरण के अंतर्गत प्रदत्त सामग्री प्रस्तुत की गयी है। इस ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त छात्रों को कर्ता कारक (प्रथमाविभक्ति) और कर्म कारक (द्वितीयाविभक्ति) का अच्छी प्रकार से ज्ञान प्राप्त हो गया होगा। वाक्यों में प्रथमाविभक्ति एवं द्वितीयाविभक्ति का प्रयोग कहाँ होता है यह भी अच्छी प्रकार से जान गए होंगे एवं संस्कृत में वाक्य बनाने के कर्म अथवा द्वितीयाविभक्ति का प्रयोग किन–किन शब्दों अथवा धातुओं के योग में होता है यह भी इकाई में दिए गए उदाहरणों से आपको भली–भांति स्पष्ट हो गया होगा। सूत्रों की वृत्ति एवं व्याख्या से विभिन्न वाक्यात्मक प्रयोग करने में भी आप सक्षम हो गए होंगे।

7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. व्याकरण सिद्धांतकौमुदी (भट्टोजिदीक्षितकृत) – हिंदी टीका – गोविन्दाचार्य
2. व्याकरण सिद्धांतकौमुदी (भट्टोजिदीक्षितकृत) – बालमनोरमा टीका सहित
3. व्याकरण सिद्धांतकौमुदी (भट्टोजिदीक्षितकृत) –तत्त्वबोधिनी टीका सहित
4. व्याकरण सिद्धांतकौमुदी (भट्टोजिदीक्षितकृत) – हिंदी व्याख्या : धरानन्द घिल्डियाल

7.6 अभ्यास प्रश्न

1. 'अकथितं च' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. **'भक्षयत्यन्नं बटुना'** उदाहरण को विभक्ति निर्देशपूर्वक समझाइए।
3. **'अतिरतिक्रमणे च'** सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. **'क्रोशं कुटिला नदी'** उदाहरण को विभक्ति निर्देशपूर्वक समझाइए।

इकाई 8 कारक प्रकरण – तृतीया और चतुर्थी विभक्ति

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- कारक प्रक्रिया के अंतर्गत तृतीया विभक्ति के संबन्ध में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- चतुर्थी विभक्ति के संबन्ध में भी आप विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- तृतीया विभक्ति एवं चतुर्थी विभक्ति में प्रयुक्त होने वाले सूत्रों तथा अनेक अर्थ, नियम एवं प्रयोग जान संकेंगे; तथा
- नये पदों की प्रकृति एवं प्रत्यय तथा उनके प्रयोग को जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

कारक शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है – करोति इति कारकम्। यहाॅ डुकृञ् करणे धातु से कर्ता अर्थ में "ण्वुल्तृचौ" सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर अकादेश, ऋकार को वृद्धि होकर कारक शब्द निष्पन्न हुआ है। लेकिन कारकप्रकरण का कारक शब्द पारिभाषिक है। करोति क्रियां निर्वर्तयतीति कारकम्, क्रियान्वयि कारकम्, साक्षात् क्रियाजनकं कारकम् इत्यादि लक्षणों से युक्त है। अर्थात् क्रिया–सम्पादन में जो–जो भी कारण बनते हैं, वे सभी कारक कहलाते हैं। प्रस्तुत इकाई में वैयारकणसिद्धान्तकौमुदी में पठित करणकारक और सम्प्रदानकारक से सम्बन्धित सूत्रों का अर्थ, प्रकृति–प्रत्यय का ज्ञान, उदाहरण, वाक्य सिद्धि, अभ्यास, निष्कर्ष आदि के बारे में बतलाया गया है। इसका अध्ययन छात्रों के लिए उपयोगी होगा।

8.2 तृतीया विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

करण–कारक में आनेवाली तृतीया के दो वाच्यार्थ हैं – आश्रय और व्यापार। करणसंज्ञा करने वाला "साधकतमं करणम्" सूत्र है। क्रिया की सिद्धि में जो सबसे अधिक उपकारक होता है। उसे करण कारक कहते हैं। जिस व्यापार के अनन्तर क्रिया की निष्पत्ति विवक्षित होती है उसे करण माना जाता है। यद्यपि कर्ता क्रिया की सिद्धि के लिये करण का आश्रय लेता है तथापि बह स्वातन्त्र्य के कारण प्रधान रहता है। क्योंकि करण कर्ता के बिना व्यापारशील नहीं होता। करणसंज्ञा होने का फल तृतीयाविभक्ति होना। जैसे – कृषकः दात्रेण लुनाति। यहाँ पर काटने की क्रिया में सबसे अधिक उपकारक दात्र है। अतः दात्र में तृतीयाविभक्ति हुयी।

वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने कहा है कि – जिस कारक के व्यापार के अनन्तर क्रिया की सिद्धि हो जाय और साथ ही वक्ता अपनी इच्छा से जिस कारक के व्यापार के तुरन्त पश्चात् क्रिया की सिद्धि होती हुई दिखा दे या सिद्ध कर दे, वही कारक करण मान लिया जाता है।

उक्तं च – क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम्।
विवक्ष्यते यदा यत्र करणं तत्तदा स्मृतम्।।

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में कारक प्रकरण के अन्तर्गत तृतीयाविभक्ति से सम्बन्धित दस सूत्र हैं–

सूत्र – स्वतन्त्रः कर्ता 1/4/54
वृत्ति – क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।
पदविश्लेषण – अत्र स्वतन्त्रः प्रथमान्तम्, कर्ता प्रथमान्तम्, द्विपदमिति।
सूत्रार्थ – क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित अर्थ रूप कारक कर्तृसंज्ञक होता है।

इस सूत्र में स्वतन्त्र संज्ञी (उद्देश्य) और कर्ता संज्ञा (विधेय) है। वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि होते हैं। इन सबमें जो प्रधान होता है या प्रधान क्रिया की सिद्धि जिससे होती है और वह वाक्य में प्रधानतया अवस्थित रहता है, जिसके विना क्रिया हो ही नहीं पाती है, ऐसे कारक की कर्तृसंज्ञा इस सूत्र से की जाती है। तात्पर्य यह है कि क्रिया की सिद्धि में कर्ता क्रिया का स्वतन्त्र रूप से जनक होता है। स्वातन्त्र्य वक्ता के अधीन है। जिसकी स्वातन्त्रेण विवक्षा होती है उसकी कर्तृसंज्ञा होती है। इसी लिए महाभाष्यकार पतंजलि ने कहा है – **"विवक्षाधीनानि कारकाणि भवन्ति"**। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है एवं कर्ता के अनुसार ही लिंग, संख्या आदि का निर्धारण होता है।

सूत्र – साधकतमं करणम् 1/4/42

वृत्ति – क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं कारकं करणसंज्ञं स्यात्। तमब्ग्रहणम् किम्? गंगायां घोषः।
पदविश्लेषण – साधकतमं प्रथमान्तं, करणं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। साधयतीति साधकम्, अतिशयितं साधकं साधकतमम्।
सूत्रार्थ – क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक की करणसंज्ञा होती है।
करण संज्ञा (विधेय) और साधकतमम् संज्ञी (उद्देश्य) है। कारके– का अधिकार होने के कारण क्रियासिद्धौ अर्थ लभ्य हो जाता है। सबसे अधिक उपकारक उपकरण को साधकतम कहा जाता है। जिसकी सहायकता से कार्य किया जाये, उसे कारण कहते है। किन्तु जिस कारण से व्यापार के अनन्तर सद्यः ही क्रिया की निष्पत्ति विवक्षित होती है उसे करण माना जाता है। यद्यपि सभी कारक क्रिया के निष्पादन में सहायक होते हैं। परन्तु जो कारक सर्वाधिक अत्यन्त निकटता के साथ सहायक होता है, उसे करण कहा जाता है।

तमब्ग्रहणं किम्? 'गङ्गायां घोषः'। कारक के अधिकार से तथा करणार्थक ल्युट् प्रत्ययान्त **'क्रियते अनेनेति करणम्'** इस महासंज्ञा से साधकत्व अर्थ तो लब्ध हो जायेगा तो केवल साधकपद ही साधकतम को बोधित करेगा। इस आशय से ग्रन्थकार प्रश्न करता है कि तमब्ग्रहणं किमिति? उत्तर देता है – 'गङ्गायां घोषः'। आशय यह है कि तुल्यन्याय से अधिकरणार्थक ल्युट् प्रत्ययान्त अधिकरणम् **(अधिक्रियते अस्मिन् इति अधिकरणम्)** इस महासंज्ञा से ही आधार रूप अर्थ लब्ध हो जायेगा, पुनः **"आधारोऽधिकरणम्"** सूत्र में आधार ग्रहण के सामर्थ्य से सब अवयवों में व्याप्ति द्वारा जो आधार है वह अधिकरण हो – यह अर्थ होगा। इस प्रकार 'तिलेषु तैलम्' इत्यादि में ही सप्तमी होगी, गङ्गायाम् इस गौण आधार में नहीं होगी। अतः तमप्–ग्रहण से कारकाधिकार में शब्द–सामर्थ्य से द्योत्य तरप्, तमप् का योग नहीं होता यह ज्ञापित होता है। अतएव **'गङ्गायां घोषः'** इत्यादि में भी अधिकरण में सप्तमी हो जायगी। इसी प्रकार प्रकृत सूत्र में भी केवल साधकपद से साधकतमत्व रूप अर्थ का लाभ नहीं हो सकता। अतः उसके लाभ के लिये तमप् ग्रहण करना परम आवश्यक है।

सूत्र – कर्तृकरणयोस्तृतीया 2/3/18
वृत्ति – अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो बाली। "प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम्" (वार्तिक 1466)। प्रकृत्या चारु। प्रायेण याज्ञिकः। गोत्रेण गार्ग्यः। समेनैति। विषमेणैति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि।
पदविश्लेषण – कर्ता च करणं च कर्तृकरणे, तयोः कर्तृकरणयोः सप्तम्यन्तं, तृतीया प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ – अनुक्त कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है। इस सूत्र में अनभिहिते का अधिकार है। अनभिहितं का अर्थ है – अनुक्ते अर्थात् अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति होती है। अधिकृत अनभिहिते पद को वचनविपरिणाम के द्वारा द्विवचनान्त अनभिहितयोः बना लिया जाता है। अतः अनभिहित का कर्ता और करण दोनों के साथ अन्वय होता है।

उदाहरण :– 'रामेण बाणेन हतो बाली' (राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया)। यहाँ पर हननक्रिया में स्वतन्त्रतया विवक्षित होने से **"स्वतन्त्रः कर्ता"** के अनुसार राम कर्ता है और हननक्रिया में अत्यन्त सहायक होने से **"साधकतमं करणम्"** से बाण की करणसंज्ञा होती है। हतः में 'हन्' धातु से कर्म अर्थ में 'क्त' प्रत्यय होकर हतः बना है। कर्म अर्थ में प्रत्यय होने के कारण कर्म उक्त हुआ और कर्ता अनुक्त हुआ। अतः **"कर्तृकरणयोस्तृतीया"** सूत्र से अनुक्त कर्ता राम और करण बाण में तृतीयाविभक्ति होकर रामेण बाणेन हतो बाली वाक्य सिद्ध होता है। अतएव '**रामकर्तृक–बाणकरणक–हिंसाक्रियाविषयो बाली**' शब्दबोध होता है।

"प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम्"। यह वार्तिक है। प्रकृत्यादि गण में पठित शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण :– **'प्रकृत्या चारु' (स्वभाव से अच्छा)**। यहाँ वार्तिक से प्रकृति शब्द में तृतीयाविभक्ति का विधान है। अतः प्रकृत्या चारु यह वाक्य बनता है।

'प्रायेण याज्ञिकः' (अधिक आचार–सम्पन्न याज्ञिक)। प्रायः शब्द का प्रकृत्यादिगण में पाठ होने के कारण "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" वार्तिक से तृतीयाविभक्ति होती है।
'गोत्रेण गार्ग्यः' (गोत्र से यह गार्ग्य है अर्थात् यह गर्ग गोत्र का है)। गार्ग्य शब्द का प्रकृत्यादिगण में पाठ होने के कारण "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" वार्तिक से तृतीयाविभक्ति होती है। गोत्रेण गार्ग्यः वाक्य सिद्ध होता है।

'समेनैति' (सीधा चलता है)। प्रकृत्यादिगण में सम शब्द का पाठ मानकर **"प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्"** वार्तिक से तृतीयाविभक्ति होती है।

'विषमेणैति' (टेढा चलता है)। प्रकृत्यादिगण में विषम शब्द का पाठ मानकर उसमें **"प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्"** वार्तिक से तृतीयाविभक्ति हुयी।

'द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति' (दो परिमाण से धान्य खरीदता है)। प्रकृत्यादिगण में द्विद्रोण–शब्द का पाठ मानकर सम्बन्धार्थ में **"प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्"** वार्तिक से तृतीयाविभक्ति हुयी।

'सुखेन **दुःखेन वा याति' (सुखपूर्वक या दुःखपूर्वक जाता है)**। प्रकृत्यादिगण में सुख और दुःख शब्दों का पाठ मानकर क्रियाविशेषण में **"प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्"** वार्तिक से तृतीयाविभक्ति हुयी।

सूत्र – दिवः कर्म च 1/4/43
वृत्ति – दिवः साधकतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्, चात् करणसंज्ञम्। अक्षैरक्षान् वा दीव्यति।

पदविश्लेषण – दिवः षष्ठ्यन्तं, कर्म प्रथमान्तं, चाव्ययम्। कारके का अधिकार है और साधकतमं करणम् से करणम् की अनुवृत्तिआती है।
सूत्रार्थ – दिव् धातु के साधकतम कारक की कर्मसंज्ञा होती है और चकार ग्रहण करने से करणसंज्ञा भी होती है।

उदाहरण :– **'अक्षैरक्षान् वा दीव्यति'** (पासों से खेलता है)। यहॉ अक्षैः यह करणतृतीया और अक्षान् यह कर्मद्वितीया है। **"दिवः कर्म च"** सूत्र से कर्मसंज्ञा एवं करणसंज्ञा होकर द्वितीया और तृतीयाविभक्ति होती हैं। अतः **'अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति'** वाक्य सिद्ध होता है।

सूत्र – अपवर्गे तृतीया 2/3/6
वृत्ति – अपवर्गः फलप्राप्तिः, तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात्। अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः। अपवर्गे किम्? मासमधीतो नायातः।
पदविश्लेषण – अपवर्गे सप्तम्यन्तं, तृतीया प्रथमान्तम्। कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे सूत्र की अनुवृत्तिआती है और अपवर्ग शब्द का अर्थ है फलप्राप्ति।
सूत्रार्थ – फलप्राप्ति अर्थ द्योत्य होने पर काल और अध्व के वाचक शब्दों के अत्यन्तसंयोग में तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण :– **'अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः'** (दिन भर में या कोस भर चलने में अनुवाक पढकर हृदयांगम कर लिया)। तात्पर्य यह है कि अनुवाक पढने के साथ याद भी हो गया अर्थात् फल की प्राप्ति हो गयी। फलप्राप्ति होने पर ही **'अपवर्गे तृतीया'** सूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर अहन् शब्द और क्रोश शब्द के तृतीया में अह्ना अनुवाकोऽधीतः, क्रोशेन अनुवाकोऽधीतः ये दोनों वाक्य सिद्ध होते हैं।

अपवर्गे किम्? 'मासमधीतो नायातः'। प्रकृतसूत्र में अपवर्गे पद का क्या प्रयोजन है? अपवर्गे का प्रयोजन है कि क्रिया के बाद फल की प्राप्ति हो तभी तृतीयाविभक्ति होती है अन्यथा फल की प्राप्ति नहीं होगी तो तृतीयाविभक्ति भी नहीं होगी। मासमधीतो नायातः (महीने भर अध्ययन किया लेकिन नहीं आया)। यहॉ पर महीने भर अध्ययन करने पर भी हृदयांगम नहीं हुआ अर्थात् फल की प्राप्ति नहीं हुयी। अतः तृतीयाविभक्ति न होकर द्वितीयाविभक्ति हुयी।

सूत्र – सहयुक्तेऽप्रधाने 2/3/19
वृत्ति – सहार्थेन युक्तेऽप्रधाने तृतीया स्यात्। पुत्रेण सहागतः पिता। एवं साकं सार्धं समं योगेऽपि। विनापि तद्योगं तृतीया, 'वृद्धो यूना' इत्यादि निर्देशात्।
पदविश्लेषण – सहयुक्ते सप्तम्यन्तम्, अप्रधाने सप्तम्यन्तम्। कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया की अनुवृत्तिआती है। सहेन युक्तः सः सहयुक्तस्तस्मिन् सहयुक्ते, तृतीयातत्पुरुषः। न प्रधानमप्रधानं तस्मिन् अप्रधानेः।

सूत्रार्थ – सह तथा सहार्थक (साकम्, सार्धम्, समम् आदि) शब्दों के योग में क्रिया से अन्वित होते हुए भी जो अप्रधान हो उसमें तृतीया विभक्ति होती है। युक्त शब्द के द्वारा वाचक अर्थ गृहीत होता है। फलतः सहयुक्ते का अर्थ है– सहार्थक शब्दों के योग में। प्रधान और अप्रधान का निर्णय क्रिया के साथ अन्वय से होता है। क्रिया के साथ आर्थिक सम्बन्ध होते हुए शब्द–सम्बन्ध भी जिसका होता है, उसे प्रधान और तद्भिन्न अप्रधान कहते हैं।

उदाहरण :– **'पुत्रेण सहागतः पिता'** (पिता पुत्र के साथ आया)। यहाॅ पर पिता की प्रधानता है क्योंकि मुख्य रूप से आगमन पिता का हो रहा है। पिता का क्रिया के साथ शाब्दिक एवं आर्थिक दोनों सम्बन्ध हैं। अप्रधान पुत्र में **'सहयुक्तेऽप्रधाने'** सूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर 'पुत्रेण सह आगतः' वाक्य बनता है।

एवं साकं सार्धं समं योगेऽपि। प्रकृतसूत्र में युक्त से शब्द सह–शब्द के अर्थ वाले शब्दों का भी ग्रहण किया जाता है। अतः साकं, सार्धं, समम् आदि शब्दों के योग में भी तृतीया विभक्ति होती है। कहीं–कहीं सह आदि योग के बिना भी तृतीयाविभक्ति होती है। **"वृद्धो यूना"** इत्यादि पाणिनीय प्रयोगों के निर्देश से। यहाॅ युवन् शब्द के तृतीया में यूना बनता है। अतः सह शब्द का अध्याहार किया जाता है।

सूत्र – **येनाङ्गविकारः 2/3/20**
वृत्ति – येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततः तृतीया स्यात्। अक्ष्णा काणः। अक्षिसम्बन्धिकाणत्वविशिष्टः इत्यर्थः। अंगविकारः किम्। अक्षि काणमस्य।
पदविश्लेषण – अंगानि अस्य सन्ति इति अगं शरीरम्, अंगस्य विकारोऽगंविकारः षष्ठीतत्पुरुषः। येन तृतीयान्तम्, अंगविकारः प्रथमान्तम्। अंग शब्द से अर्शआदिभ्योऽच् सूत्र से अच् प्रत्यय होकर अंग शब्द निष्पन्न होता है।

सूत्रार्थ – जिस विकृत् अंग के द्वारा अंगी का विकार लक्षित होता है, उसके वाचक शब्द से तृतीया होती है।

उदाहरण :– **'अक्ष्णा काणः'**, अक्षिसम्बन्धिकाणत्वविशिष्टः इत्यर्थः (ऑख से काना)। अर्थात् नेत्रसम्बन्धी काणत्व से युक्त है, ऐसा अर्थ है। प्रकृत उदाहरण में काणत्व विकार है। यह विकृत अंग के द्वारा लक्षित होता है। वस्तुतः काणत्व धर्म ऑख का है, व्यक्ति का नहीं तथापि उस विकार के कारण पूरे शरीर का विकारयुक्त कानापन परिलक्षित हो रहा है। अंग वाचक अक्षि शब्द में 'येनाङ्गविकारः' सूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर 'अक्ष्णा' बन गया है। **अङ्गविकारः किम्? अक्षि काणमस्य** (इसकी ऑख कानी है)। सूत्र में अङ्गविकार शब्द का क्या प्रयोजन है? अङ्गविकारः पद का प्रयोजन है कि शरीर का विकार लक्षित होने पर ही विकृत अङ्गवाचक शब्द से तृतीयाविभक्ति होती है। प्रस्तुत उदाहरण में शरीर का विकार परिलक्षित न होकर नेत्रविकार परिलक्षित हो रहा है। अतः इस सूत्र से तृतीयाविभक्ति नहीं हुयी।

सूत्र – इत्थम्भूतलक्षणे 2/3/21

वृत्ति – कंचित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात्। जटाभिस्तापसः। जटाज्ञाप्यतापसविशिष्ट इत्यर्थः।

पदविश्लेषण – अयं प्रकारः इत्थम्, तं भूतः प्राप्तः इत्थम्भूतः। लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं ज्ञापकम्। इत्थम्भूतस्य लक्षणम् इत्थम्भूतलक्षणं, तस्मिन् इत्थम्भूतलक्षणे, षष्ठीतत्पुरुषः।

सूत्रार्थ – जिससे विशेषता लक्षित होती है उस विशेषता वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण :– **'जटाभिस्तापसः'** (जटाओं से लगता है कि यह तपस्वी है)। यहॉ पर जटा लक्षण है। इसके द्वारा व्यक्ति का तापसत्व लक्षित हो रहा है। अतः तापसत्व इत्थम्भूत है। इत्थम्भूत का ज्ञापक जटा शब्द में प्रकृतसूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर **'जटाभिस्तापसः'** वाक्य सिद्ध होता है।

सूत्र – संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि 2/3/22

वृत्ति – सम्पूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया वा स्यात्। पित्रा पितरं वा संजानीते।

पदविश्लेषण :– सम् पूर्वा ज्ञा संज्ञा, तस्य संज्ञः। संज्ञः षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्याम् विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। कर्मणि सप्तम्यन्तम्। अनभिहिते का अधिकार है और कर्तृकरणयोस्तृतीया सूत्र से तृतीया की अनुवृत्तिआती है।

सूत्रार्थ – सम्पूर्वक ज्ञा धातु के अनुक्त कर्म में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है। यहाँ सम्पूर्वक ज्ञा अवबोधने धातु का ग्रहण है और उपसर्ग सहित ज्ञा धातु का अर्थ है – ठीक से पहचानना।

उदाहरण :– 'पित्रा पितरं वा संजानीते' (पिता को ठीक से पहचानता है)। यहॉ पर सम्पूर्वक ज्ञा धातु का कर्म पितृ– शब्द है। पितृशब्द में **"संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि"** सूत्र के द्वारा विकल्प से तृतीया विभक्ति हुयी। अतः 'पित्रा संजानीते' वाक्य बनता है। जब तृतीयाविभक्ति नहीं होगी तो द्वितीयाविभक्ति होकर 'पितरं संजानीते' वाक्य बनता है।

सूत्र – हेतौ 2/3/23

वृत्ति – हेत्वर्थे तृतीया स्यात्। द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम्। करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च। दण्डेन घटः। पुण्येन दृष्टो हरिः। फलमपीह हेतुः। अध्ययनेन वसति। "गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका"। अलं श्रमेण। श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः। इह साधनक्रियां प्रति श्रमः करणम्। शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः। शतेन परिच्छिद्येत्यर्थः। "अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया" (वा0 5040)। दास्या संयच्छते कामुकः। धर्म्ये तु भार्यायै संयच्छति।

सूत्रार्थ – हेतु वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। करण अर्थ के अतिरिक्त हेतु अर्थ में तृतीयाविभक्ति का विधान किया जा रहा है। इस विधान से यह सूचित होता है कि करण और हेतु में अन्तर है। हेतु का अर्थ है कारण। अतः हेतुवाचक शब्द में तृतीया विभक्ति होगी। हेतु और करण के अन्तर को स्पष्ट किया जार रहा है। **हेतु** – द्रव्य, गुण तथा कर्म इन तीनों का साधक होता है। इसके साथ ही हेतु क्रियाहीन एवं क्रियायुक्त दोनों प्राकर का होता है। कहा भी गया है – द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम्। **करण** – कारण है। अतः वह केवल क्रिया का साधक होता है। अर्थात् केवल क्रियायुक्त (सव्यपार) होता है। कहा भी गया है कि करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च।

उदाहरण :– **'दण्डेन घटः' (दण्ड से घड़ा बनता है)**। यह द्रव्य का उदाहरण है। घट का कारण दण्ड द्रव्य है और व्यापारशून्य भी है। अतः हेतुभूत दण्ड में **'हेतौ'** सूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर दण्डेन घटः वाक्य बनता है।

'पुण्येन दृष्टः हरिः' (पुण्य से हरि को देखा)। यहॉ हरिदर्शन–क्रिया का पुण्य हेतु है अर्थात् पुण्य के कारण हरिदर्शन हुआ। पुण्य शब्द में **'हेतौ'** सूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर पुण्येन दृष्टः हरि वाक्य सिद्ध होता है।

'अध्ययनेन वसति' (अध्ययन के लिये रहता है)। गुरुकुल इत्यादि में निवास का फल अध्ययन है। यहॉ प्रकृतसूत्र में फल को भी हेतु माना गया है। इसीलिए अध्ययन शब्द में **'हेतौ'** सूत्र से तृतीयाविभक्ति होकर अध्ययनेन वसति वाक्य बनता है। यदि फल को हेतु नहीं मानते तो तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या वार्तिक से चतुर्थीविभक्ति होने लगती।

"गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका"। अर्थ द्वारा प्रतीत होने वाली क्रिया (गम्यमाना) भी कारक–विभक्ति का हेतु होती है। तात्पर्य यह है कि यदि क्रिया का शाब्दिक प्रयोग न किया गया हो किन्तु वाक्यार्थ में उसकी प्रतीति हो रही हो तो वह गम्यमान क्रिया भी कारक विभक्ति के विधान के लिये निमित्त बन जाती है। जैसे **अलं श्रमेण** अर्थात् परिश्रम से साध्य नहीं है। यहॉ साधन क्रिया है जो साक्षात् प्रयुक्त नहीं है किन्तु यह वाक्यार्थ से गम्यमान है। इस गम्यमान क्रिया के प्रति श्रम सर्वाधिक उपकारक है। अतः गम्यमान क्रिया को मानकर श्रम शब्द की करणसंज्ञा होकर तृतीयाविभक्ति होती है।

'शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः' (सौ–सौ बछडों को अलग–अलग कर जल पिलाता है)। यहॉ विभाजन क्रिया अप्रयुक्त होने के कारण गम्यमान क्रिया है और उसके प्रति शत उपकारक होने के कारण करण है। अतः शत शब्द में तृतीयाविभक्ति होती है।

"अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया"। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थ :– जहॉ अनैतिक आचरण सूचित होता हो और दाण् धातु का प्रयोग हो तो वहॉ चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे – दास्या संयच्छते कामुकः (कामुक पुरुष दासी को धन देता है)।

यहॉ दा धातु का प्रयोग है। दान अर्थ में चतुर्थीविभक्ति प्राप्त है किन्तु प्रकृतवार्तिक से तृतीयाविभक्ति होकर दास्या संयच्छते कामुकः वाक्य बनता है। यदि धर्म्य अर्थात् शिष्टव्यवहार अर्थ हो तो तृतीयाविभक्ति नहीं होती। चतुर्थी का ही विधान होता है। जैसे – धर्म्ये तु भार्यायै संयच्छति इति।

8.2 सम्प्रदान कारक (चतुर्थी विभक्ति)

सम्प्रदान शब्द का अर्थ है उद्देश्य अर्थात् **'सम्यक् दीयते अस्मै इति सम्प्रदानम्'**। जैसे –'विप्राय गां ददाति' इस वाक्य में दा धातु का अर्थ है 'स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्ति' अर्थात् किसी वस्तु में अपने अधिकार की निवृत्तिऔर दूसरे के अधिकार की उत्पत्ति कराना। यहॉ पर कर्ता की इस इच्छा का उद्देश्य विप्र है और गो में स्वस्वत्पनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्ति रूप फल ही व्यापार है। विप्र में चतुर्थीविभक्ति होकर विप्राय रूप बनता है। अतः इच्छा के उद्देश्य का नाम ही सम्प्रदान है।

8.3 चतुर्थी विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में कारक प्रकरण के अन्तर्गत चतुर्थीविभक्ति से सम्बन्धित सूत्र इस प्रकार हैं –

सूत्र – कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् 1/4/32
वृत्ति – दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।
पदविश्लेषण – अस्मिन् सूत्रे कर्मणा तृतीयान्तम्, यं द्वितीयान्तम्, अभिप्रैति तिङन्तक्रियापदम्, सः प्रथमान्तम्, सम्प्रदानं प्रथमान्तपदमिति पंचपदानि वर्तन्ते। यह सम्प्रदानसंज्ञा करने वाला सूत्र है। कर्मणा शब्द करण–कारक में तृतीयाविभक्ति होकर निष्पन्न होता है। **'सम्यक् प्रदानं सम्प्रदानम्'** अर्थात् **'सम्यक्–प्रकर्षेण दीयते अस्मै'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसको वापस न लेने के लिए ही दिया जाता है वह सम्प्रदान कहलाता है। सम्प्रदान की दूसरी व्युत्पत्ति है :– **सम्प्रदीयते यस्मै तत् सम्प्रदानमिति। दानशब्दस्य अर्थः "अपुनर्ग्रहणाय स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वोत्पादनम्"** अर्थात् किसी वस्तु को अपने अधिकार से सदा के लिए हटाकर दूसरे के अधिकार में देना।
सूत्रार्थ – कर्ता दान आदि क्रिया के शेषित्व–भोक्तृत्व के रूप में जिससे सम्बद्ध करना चाहता है, उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है।

सूत्र – चतुर्थी सम्प्रदाने 2/3/32

वृत्ति – विप्राय गां ददाति। अनभिहित इत्येव। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः। "क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्" (वा. 1085)। पत्ये शेते। "यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा" (वा. 1085)। पशुना रुद्रं यजते। पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः।
पदविश्लेषण – चतुर्थी प्रथमान्तं, सम्प्रदाने सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्।
सूत्रार्थ – अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण :– 'विप्राय गां ददाति' (विप्र को गाय देता है)। यहॉ पर दानकर्म के द्वारा अभिप्रेत कर्म शेषित्व के रूप में विप्र, उसकी **"कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्"** से सम्प्रदानसंज्ञा के बाद **"चतुर्थी सम्प्रदाने"** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर 'विप्राय गां ददाति' वाक्य बनता है। **अनभिहित इत्येव** अर्थात् प्रकृतसूत्र में अनभिहिते का अधिकार आता है। अनभिहित का अर्थ है अनुक्त। अतः सम्प्रदान के अनुक्त होने पर ही चतुर्थीविभक्ति होती है। दानीयो विप्रः में विप्र में सम्प्रदान है लेकिन दा धातु से अनीयर् प्रत्यय सम्प्रदान के अर्थ में हुआ है। अतः अनीयर् प्रत्यय के द्वारा सम्प्रदान उक्त होने के कारण दानीयो विप्रः में सम्प्रदान अनुक्त नहीं हुआ और विप्र में प्रथमा विभक्ति होकर **"दानीयो विप्रः"** वाक्य बनता है।

"क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्" (वा. 1085)। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थ :– क्रिया के द्वारा कर्ता जिसे लक्षित करता है, उसकी भी सम्प्रदानसंज्ञा होती है।

उदाहरण :– **पत्ये शेते** (पति के लिए शयन करती है)। यहाँ पर भाव यह है कि पति को अनुकूल करने के लिए शयन करती है। शयन करना पति के निमित्त है अर्थात् पति को अनुकूल करना। पतिशब्द की प्रकृतवार्तिक के द्वारा सम्प्रदानसंज्ञा होती है और '**चतुर्थी सम्प्रदाने**' सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर '**पत्ये शेते**' यह वाक्य बनता है।

"यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा" (वा. 1085)। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थ :– यज् धातु के कर्म की करणसंज्ञा तथा सम्प्रदान की कर्मसंज्ञा होती है।

उदाहरण :– **पशुना रुद्रं यजते। पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः।** पशु से रुद्र का यजन करता है अर्थात् रुद्र को पशुदान करता है। यहॉ पर यजन क्रिया का कर्म पशु है और रुद्र सम्प्रदान है। इस वार्तिक से कर्मभूत पशु की करणसंज्ञा होने पर तृतीया और सम्प्रदानभूत रुद्र की कर्मसंज्ञा होने पर 'पशुना रुद्रं यजते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

सूत्र – रुच्यर्थानां प्रीयमाणः 1/4/33
वृत्ति – रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः सम्प्रदानं स्यात्। हरये रोचते भक्तिः। अन्यकर्तृकोऽभिलाषो रुचिः। हरिनिष्ठप्रतीतेर्भक्तिः कर्त्री। प्रीयमाणः किम्? देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि।

पदविश्लेषण – रुचिः अर्थो येषां ते रुच्यर्थाः धातवः तेषां रुच्यर्थानाम्। रुच्यर्थानां षष्ठीबहुवचनान्तम्, प्रीयमाणः प्रथमान्तम्। कारके का अधिकार है।
सूत्रार्थ – रुचि अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में प्रीयमाण की सम्प्रदान संज्ञा होती है।

उदाहरण :– 'हरये रोचते भक्तिः' (हरि को भक्ति अच्छी लगती है)। यहॉ रुचि का अर्थ इच्छा है। भक्ति ने हरि में भक्त के प्रति प्रीति उत्पन्न कर दी है और भक्ति से उत्पन्न होने वाली प्रीति से प्रसन्न होने वाले प्रीयमाण हरि हैं। अतः **'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः'** सूत्र से हरि की सम्प्रदानसंज्ञा होकर "चतुर्थी सम्प्रदाने" सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होने पर 'हरये रोचते भक्तिः' यह वाक्य बनता है।

प्रीयमाणः किम्? देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि (देवदत्त को रास्ते में लड्डू अच्छे लगते हैं)। प्रकृत सूत्र में प्रीयमाण पद का क्या प्रयोजन है? उत्तर में कहते हैं कि प्रीयमाण पद का प्रयोजन है कि प्रीयमाण की ही सम्प्रदान संज्ञा होगी, अन्य की नहीं। जैसे **'देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि'**। यहॉ पर प्रीयमाण देवदत्त की सम्प्रदान संज्ञा होगी, किन्तु मार्गवाचक पथिन् शब्द की प्रीयमाण न होने के कारण सम्प्रदानसंज्ञा नहीं होगी। क्योंकि प्रीति का आधार पथिन् शब्द नहीं अपितु देवदत्त ही है। यदि सूत्र में प्रीयमाण ग्रहण न करते तो पथिन् शब्द की भी सम्प्रदानसंज्ञा हो जाती। अतः पथिन् शब्द में आधारत्व होने के कारण अधिकरणसंज्ञा होकर सप्तमीविभक्ति होती है।

सूत्र – श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः 1/4/34
वृत्ति – एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टः सम्प्रदानं स्यात्। गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते ह्नुते तिष्ठते शपते वा। ज्ञीप्स्यमानः किम् देवदत्ताय श्लाघते पथि।
पदविश्लेषण – श्लाघश्च, हुङ् च स्थाश्च शप् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः श्लाघह्नुङस्थाशपस्तेषां श्लाघह्नुङ्स्थाशपाम्। श्लाघह्नुङ्स्थाशपां षष्ठीबहुवचनान्तं, ज्ञीप्स्यमानः प्रथमान्तम्।
सूत्रार्थ – श्लाघ, ह्नुङ्, स्था, शप् इन धातुओं के प्रयोग में तत्तत् क्रियाओं के द्वारा जनाये जाने की इच्छा वाला जो है, उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है। सूत्र में ज्ञीप्स्यमानः शब्द का अर्थ है – जनाये जाने की इच्छा वाला। श्लाघृ कत्थने – प्रशंसा करना, ह्नुङ् अपनयने – छिपाना, ष्ठा गतिनिवृत्तौ– ठहरना, शप् उपालम्भे – शपथ लेना। इन चारों धातुओं के योग में इनके द्वारा जिसे बतलाना इष्ट हो उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है।

उदाहरण :– **गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते**। (गोपी कामवश कृष्ण को अपना आशय बताने हेतु उनकी प्रशंसा करती है)। यहॉ पर कृष्ण ही ज्ञीप्स्यमान है। अतः कृष्ण की श्लाघ् धातु का योग रहने पर प्रकृत सूत्र से सम्प्रदानसंज्ञा होती है और चतुर्थी सम्प्रदाने से चतुर्थीविभक्ति होकर कृष्णाय रूप बनता है।

गोपी स्मरात् कृष्णाय ह्नुते (गोपी कामवश कृष्ण को अपना आशय बताने हेतु उनकी प्रशंसा करती है)। यहॉ पर कृष्ण शब्द ज्ञीप्स्यमान है। अतः कृष्ण की ह्नुङ् धातु का योग रहने पर प्रकृत सूत्र से सम्प्रदानसंज्ञा होती है और चतुर्थी सम्प्रदाने से चतुर्थीविभक्ति होकर गोपी स्मरात् कृष्णाय ह्नुते वाक्य बनता है।

गोपी स्मरात् कृष्णाय तिष्ठते (गोपी कामवश अपना आशय कृष्ण को बताने के लिए खडी रहती है)। यहॉ पर कृष्ण शब्द ज्ञीप्स्यमान है। अतः कृष्ण की स्था धातु का योग रहने पर प्रकृत सूत्र से सम्प्रदानसंज्ञा होती है और चतुर्थी सम्प्रदाने से चतुर्थीविभक्ति होकर गोपी स्मरात् कृष्णाय तिष्ठते वाक्य बनता है।

गोपी स्मरात् कृष्णाय शपते (गोपी कामवश अपना आशय कृष्ण को बताने के लिए उलाहनायें देती है)। यहॉ पर कृष्ण शब्द ज्ञीप्स्यमान है। अतः कृष्ण की शप् धातु का योग रहने पर प्रकृ त सूत्र से सम्प्रदानसंज्ञा होती है और चतुर्थी सम्प्रदाने से चतुर्थीविभक्ति होकर गोपी स्मरात् कृष्णाय शपते वाक्य बनता है।

प्रकृतसूत्र में ज्ञीप्स्यमानः किम्? अर्थात् ज्ञीप्स्यामान का क्या प्रयोजन है? उत्तर देते हैं कि उपरोक्त चारों धातुओं के योग रहने पर ज्ञीप्स्यमान की ही सम्प्रदानसंज्ञा हो और जो ज्ञीप्स्यमान नहीं हो उसकी सम्प्रदानसंज्ञा न हो। जैसे – **'देवदत्ताय श्लाघते पथि'** (मार्ग में देवदत्त को बताने के उद्देश प्रशंसा करता है)। इस वाक्य में देवदत्त तो ज्ञीप्स्यमान है लेकिन पथिन् शब्द ज्ञीप्स्यमान नहीं है। अतः पथिन् शब्द की सम्प्रदानसंज्ञा नहीं हुयी। पथिन् शब्द आधार होने के कारण अधिकरणसंज्ञा होने पर सप्तमीविभक्ति होकर पथि बन जाता है।

सूत्र – धारेरुत्तमर्णः 1/4/35
वृत्ति – धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्ण उक्तसंज्ञः स्यात्। भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः। उत्तमर्णः किम् देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे।
पदविश्लेषण – उत्तमम् ऋणं यस्य सः उत्तमर्णः। धारेः षष्ठ्यन्तम्, उत्तमर्णः प्रथमान्तम्। ऋण लेने वाला अधमर्ण और ऋण देने वाला उत्तमर्ण कहलाता है। इस सूत्र से उत्तमर्ण की ही सम्प्रदान संज्ञा होती है, अधमर्ण की नहीं।
सूत्रार्थ – णिच् प्रत्ययान्त धृङ् धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण की सम्प्रदान संज्ञा होती है।

उदाहरण :– भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (हरि भक्त के लिए मोक्ष धारण करते हैं) यहॉ पर भक्त की भक्ति की पराकाष्ठा को देखकर भगवान् भक्त को मोक्ष देने के ऋणी बन जाते हैं। अतः भक्त उत्तमर्ण एवं हरि अधमर्ण है। हरि की पूजा करता हुआ भक्त भक्तिपूर्वक तुलसीदल आदि समर्पण करता है और भगवान् उसको ग्रहण करके प्रसन्न हो जाते हैं। अपने को भक्त का ऋणी मानते हैं तथा उसके बदले मोक्ष देकर ही अपने को ऋणमुक्त करते हैं। पुराणों में कहा गया है– **तोयं वा पत्रं वा यद्वा किंचित् समर्पितं भक्त्या। उत्तमर्णः किम्?**

देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे (देवदत्त का सौ रुपये का ग्राम में ऋण है) इस वाक्य में देवदत्त उत्तमर्ण है इसलिए देवदत्त की सम्प्रदान संज्ञा हुयी लेकिन ग्राम आधार है अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा नहीं हुयी। यदि उत्तमर्ण शब्द नहीं होता तो ग्राम की भी सम्प्रदान संज्ञा हो जाती ग्रामे की जगह ग्रामाय यह अनिष्ट प्रयोग बनता।

सूत्र – स्पृहेरीप्सितः 1/4/36

वृत्ति – स्पृहयतेः प्रयोगे इष्टः सम्प्रदानं स्यात्। पुष्पेभ्यः स्पृहयति। ईप्सितः किम् पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति। ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा। प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात्कर्मसंज्ञा। पुष्पाणि स्पृहयति।

पदविश्लेषण – स्पृहेः षष्ठ्यन्तम्, ईप्सितः प्रथमान्तम् द्विपदमिदं सूत्रम्।

सूत्रार्थ – स्पृह् धातु के योग में ईप्सित–इष्ट की सम्प्रदान संज्ञा होती है। यहाँ पर चुरादि की 'स्पृह्' ईप्सायाम् धातु का ग्रहण है और उसमें स्वार्थिक णिच् होकर स्पृहि धातु बनती है। उसका लट् प्रथमपुरुष एक वचन का रूप है स्पृहयते। इसका अर्थ इच्छानुकूल संयोगात्मक व्यापार। जैसे – **'पुष्पेभ्यः स्पृहयति'** (फूलों को चाहता है) यहॉ पर पुष्प इष्ट है स्पृहि धातु का प्रयोग है। अतः पुष्प की सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी विभक्ति होती है।

प्रत्युदाहरणः **ईप्सितः किम्? 'पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति'** (वन में फूलों को चाहता है)। यहॉ वन ईप्सित नहीं है इसलिए वन की सम्प्रदान संज्ञा नहीं होती, वन आधार होने के कारण अधिकरणसंज्ञा होकर सप्तमीविभक्ति होती है।

ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा। प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात्कर्मसंज्ञा। पुष्पाणि स्पृहयति। अर्थात् स्पृह धातु के योग में केवल ईप्सित अर्थ में ही सम्प्रदानसंज्ञा होती है। ईप्सिततम (फलाश्रय के रूप में) की विवक्षा होने पर कर्मसंज्ञा होकर द्वितीयाविभक्ति होती है। अर्थात् फूलों को अत्यधिक चाहता है।

सूत्र – क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः 1/4/36

वृत्ति – क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपः स उक्तसंज्ञः स्यात्। हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा। यं प्रति कोपः किम्? भार्यामीर्ष्यति। मैनामन्योऽद्राक्षीदिति। क्रोधोऽमर्षः। द्रोहोऽपकारः। ईर्ष्या अक्षमा। असूया गुणेषु दोषाविष्करणम्। द्रोहादयोऽपि कोपप्रभवा एष गृह्यन्ते। अतो विशेषणं सामान्येन यं प्रति कोपः इति।

पदविश्लेषण – कुधश्च द्रुहश्च ईर्ष्या च असूया च तासाम् इतरेतरयोगद्वन्द्वः। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयाः अर्था येषाम् ते क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थास्तेषां क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम्। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां षष्ठयन्तं, यम् द्वितीयान्तं, प्रति अव्ययं कोपः प्रथमान्तम्।

सूत्रार्थ – क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य् तथा असूय् धातुओं अथवा इनके समानार्थक धातुओं के योग में जिसके प्रति कोप हो, उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूया में द्वन्द्व समास है। इसके अन्त में अर्थ शब्द आया हुआ है, इसलिए अर्थ का प्रत्येक धातु के साथ योग होता है। **'क्रुध्'** क्रोधे, **'द्रुह'** द्रोहे धातुयें दिवादिगणीय हैं। **'ईर्ष्य्'** ईर्ष्यायाम् धातु भ्वादि की है। **'असूञ्'** उपतापे

धातु कण्ड्वादिगण की है। इन धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप किया जाता है, उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है साथ ही इनके समानार्थ वाली धातुओं के योग में भी सम्प्रदानसंज्ञा होती है। अर्थात् जिसके प्रति कोप किया जाये उसी की सम्प्रदानसंज्ञा होगी।

उदाहरण – 'हरये क्रुध्यति' (हरि पर क्रोध करता है)। यहॉ पर क्रुध् धातु का योग है। प्रकृतसूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होने पर 'चतुर्थी सम्प्रदाने' से चतुर्थीविभक्ति होती है। अतः हरये क्रुध्यति वाक्य बनता है। 'हरये द्रुह्यति' (हरि पर द्रोह करता है)। यहॉ पर द्रुह् धातु का योग है। प्रकृतसूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होने पर **"चतुर्थी सम्प्रदाने"** से चतुर्थीविभक्ति होती है। अतः हरये द्रुह्यति वाक्य बनता है। 'हरये ईर्ष्यति' (हरि की ईर्ष्या करता है)। यहॉ पर ईर्ष्य् धातु का योग है। प्रकृतसूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होने पर **"चतुर्थी सम्प्रदाने"** से चतुर्थीविभक्ति होती है। अतः हरये ईर्ष्यति वाक्य बनता है। **'हरये असूयति'** (हरि के गुणों में दोष निकालता है)। यहॉ पर असूय् धातु का योग है। प्रकृतसूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होने पर **"चतुर्थी सम्प्रदाने"** से चतुर्थीविभक्ति होती है। अतः हरये असूयति वाक्य बनता है।

उपरोक्त उदाहरणों में हरि के प्रति क्रोध करना, हरि के प्रति द्रोह करना, हरि के प्रति ईर्ष्या करना, हरि के गुणों में दोष निकालना अर्थात् कोप प्रकट हो रहा है इसलिए हरि में द्वितीयाविभक्ति नहीं हुयी। सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थीविभक्ति होती है।

यं प्रति कोपः किम्? भार्याम् ईर्ष्यति, मा एनाम् अन्यो अद्राक्षीत् इति। इस वाक्य में भार्या के प्रति कोप नहीं है। प्रकृतसूत्र में यं प्रति कोपः का प्रयोजन है कि जिसके प्रति कोप हो, उसकी ही सम्प्रदानसंज्ञा होती है। यहॉ पर भार्या के प्रति ईर्ष्या का कारण यह है कि कोई दूसरा उसे न देखे। अतः भार्या के प्रति ईर्ष्या न होने के कारण प्रकृत सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा नहीं हुयी। कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया का विधान हुआ।

सूत्र – क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म 1/4/38
वृत्ति – सोपसर्गयोरनयोर्योगे यं प्रति कोपः तत्कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। क्रूरमभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति वा।
पदविश्लेषण – क्रुधश्च द्रुह च तयोः इतरेतरयोगद्वन्द्वः क्रुधद्रुहौ तयोः क्रुधद्रहोः।
सूत्रार्थ – उपसर्ग से युक्त क्रुध् और द्रुह् धातुओं के योग में, जिसके प्रति कोप किया जाता है, उसकी कर्मसंज्ञा होती है। उपर्युक्त सूत्र में पठित उपसृष्ट का अर्थ है उपसर्ग से युक्त।

उदाहरण :– क्रूरमभिक्रुध्यति, (क्रूर पर क्रोध करता है)। यहॉ अभि उपसर्गक क्रुध् धातु है। क्रूर के प्रति ही क्रोध किया जा रहा है। अतः क्रूर शब्द की पूर्व सूत्र **क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः** से सम्प्रदानसंज्ञा प्राप्त है, किन्तु प्रकृतसूत्र से कर्म संज्ञा होती है और कर्मणि द्वितीया से द्वितीयाविभक्ति होकर क्रूरमभिक्रुध्यति वाक्य बनता है।

क्रूरम् अभिद्रुह्यति (क्रूर पर द्रोह करता है)। यहॉ पर भी अभि उपसर्गक द्रुह धातु है। क्रूर के प्रति ही द्रोह किया जा रहा है। अतः क्रूर शब्द की पूर्व सूत्र क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः से सम्प्रदानसंज्ञा प्राप्त है।

सूत्र – राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः 1/4/39
वृत्ति – एतयोः कारकं सम्प्रदानं स्यात्, यदीयो विविधः प्रश्नः क्रियते। कृष्णाय राध्यति, ईक्षते वा। पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थः।
पदविश्लेषण – राधिश्च ईक्षिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः राधीक्षी विविधः प्रश्नो विप्रश्नः।
सूत्रार्थ – राध् और ईक्ष् धातुओं के प्रयोग में जिसके विषय में विविध प्रश्न किया जा रहा है, उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है। यहाँ राध् संसिद्धौ और ईक्ष् दर्शने इन दो धातुओं का ग्रहण है। यस्य शब्द से जिसके विषय में विविध प्रश्न किया गया है, उसी का परामर्श होता है।

उदाहरण :– कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा (कृष्ण के शुभाशुभ का विचार करते हैं)। यहॉ पर पहले भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में ननद आदि ने पूछा कि इसकी ग्रहदशा और शुभाशुभ क्या है? इस तरह पूछे जाने पर गर्गाचार्य श्रीकृष्ण के शुभाशुभ का विचार करते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में कृष्ण की **"राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः"** सूत्र से सम्प्रदानसंज्ञा होने पर **"चतुर्थी सम्प्रदाने"** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा वाक्य सिद्ध होता है।

सूत्र – प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता 1/4/40
वृत्ति – आभ्यां परस्य शृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्तनारूपस्य व्यापारस्य कर्ता सम्प्रदानं स्यात्। विप्राय गां प्रतिशृणोति, आशृणोति वा। विप्रेण मह्यं देहीति प्रवर्तितस्तत्प्रतिजानीते इत्यर्थः।
पदविश्लेषण – प्रतिश्च आङ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः समासः, प्रत्याङौ ताभ्याम् प्रत्याङभ्याम् पंचमीद्विवचनान्तम्, श्रुवः षष्ठ्यन्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, कर्ता प्रथमान्तम्।
सूत्रार्थ – प्रति और आङ् से परे श्रु धातु के प्रयोग में पूर्व प्रर्वतना रूप व्यापार के कर्ता की सम्प्रदान संज्ञा होती है। प्रतिपूर्वक श्रु धातु और आङ् पूर्वक श्रु धातु का अर्थ है – किसी व्यक्ति से किसी कार्यविशेष के लिये प्रेरणा करने के पश्चात् मैं ऐसा ही करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करना। कोई व्यक्ति दूसरे से किसी बात के लिए कहता है। दूसरा व्यक्ति उस बात को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करता है। ऐसी स्थिति में प्रथम व्यक्ति प्रेरणारूप प्रथम व्यापार का कर्ता मान जाता है और दूसरा व्यक्ति अभ्यनुज्ञारूप द्वितीय व्यापार का। वाक्य में दोनों कर्तृपदों का प्रयोग होने पर प्रथम व्यापार के कर्ता की सम्प्रदानसंज्ञा के लिये यह सूत्र है।

उदाहरण :– विप्राय गां प्रतिशृणोति (विप्र को गौ देने की प्रतिज्ञा करता है)। यहॉ पहले विप्र गाय मॉगता है। अतः पूर्वप्रवर्तना अर्थात् पूर्व प्रेरक विप्र है। तदन्तर यजमान ब्राह्मण को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है। पूर्व व्यापार के कर्ता विप्र की प्रकृतसूत्र से सम्प्रदानसंज्ञा होती है। विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा यह चतुर्थीविभक्ति से युक्त वाक्य बनता है।

सूत्र – अनुप्रतिगृणश्च 1/4/41

वृत्ति – आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्वव्यापारस्य कर्तृभूतमुक्तसंज्ञं स्यात्। होत्रेऽनुगृणाति, प्रतिगृणाति। होता प्रथमं शंसति, तमध्वर्युः प्रोत्साहयतीत्यर्थः।

पदविश्लेषण – अनुश्च प्रतिश्च अनुप्रती, ताभ्यां अनुप्रतिभ्याम्। यहॉ पंचमी का लुप्तनिर्देश है। अनुप्रति लुप्तपंचमीकं पदं, गृणः षष्ठ्यन्तं चाव्ययमिति।

सूत्रार्थ – अनु तथा प्रति उपसर्ग पूर्वक गृ धातु के योग में पूर्व व्यापार का जो कर्ता उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। सूत्र की वृत्तिमें जो उदाहरण दिया गया है, वह प्रसंग याज्ञिक प्रक्रिया से सम्बन्धित है। गृ शब्दे धातु का अर्थ है – शब्द करना अर्थात् मन्त्र का उच्चारण करना। यज्ञ में चार ऋत्विक् होते हैं – होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। तात्पर्य यह है कि होता याज्ञिक स्तुति करता है। उसके शंसन (स्तुतिपरक उच्चारण) करने पर अध्वर्यु (दूसरा याज्ञिक) ओऽथ मोदै च (बहुत अच्छा, मैं प्रसन्न हूँ) कहकर होता को पुनः पुनः शंसन करने के लिये प्रोत्साहित करता रहता है। प्रोत्साहन के इन वाक्यों को अनुगर एवं प्रतिगर कहते हैं। प्रकृत सूत्र से पूर्व वाक्य का जो कर्ता होता है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

उदाहरण :– होत्रेऽनुगृणाति, होत्रे प्रतिगृणाति। (होता को प्रोत्साहित करता है)। यहॉ अनु पूर्वक एवं प्रति पूर्वक गृणा धातु है उक्त सूत्र के द्वारा पूर्ववाक्य के कर्ता होतृ की सम्प्रदानसंज्ञा होने पर चतुर्थीविभक्ति होकर होत्रे रूप की सिद्धि होकर वाक्य बनता है।

सूत्र – परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् 1/4/44

वृत्ति – नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणं, तस्मिन् साधकतमं कारकं सम्प्रदानसंज्ञं वा स्यात्। शतेन शताय वा परिक्रीतः।

पदविश्लेषण – परिक्रयणे सप्तम्यन्तं, सम्प्रदानम् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्याम् विकल्पार्थकं विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। परिक्रयणम् अर्थात् निश्चितकाल के लिये किसी को वेतन पर रखना परिक्रयण कहलाता है।

सूत्रार्थ – परिक्रयण क्रिया में साधकतम कारक की विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होती है।

उदाहरण :– 'शतेन शताय वा परिक्रीतः' (सौ रुपये से नियतकाल के लिये खरीदा गया)। यहॉ पर परिक्रयण का बोध हो रहा है और उसका साधकतम शत (सौ रुपये) है। अतः शत शब्द की उक्त सूत्र से सम्प्रदानसंज्ञा होकर चतुर्थीविभक्ति होती है एवं वाक्य बनता है शताय परिक्रीतः। विकल्प से सम्प्रदानसंज्ञा का विधान है। सम्प्रदान के अभाव में करणसंज्ञा होकर तृतीयाविभक्ति होती है और वाक्य बनता है शतेन परिक्रीतः।

"तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या" (वा. 1458)। यह वार्तिक है।

'तस्मै प्रयोजनाय इदं तदर्थम्, तदर्थस्य भावस्तादर्थ्यम्, तस्मिन् तादर्थ्ये'। जिस वस्तु के लिए कोई कार्य किया जाता है, वह तदर्थ कहलाता है और तदर्थ के भाव को तादर्थ्य कहा जाता है अर्थात् उपकार्य–उपकारकभाव ही तादर्थ्य है।

उदाहरण :– 'मुक्तये हरिं भजति' (मुक्ति के लिये हरि का भजन करता है)। यहॉ मुक्ति प्रयोजन है और उसी के लिए हरि का भजन है। अतः तादर्थ्य हुआ – मुक्ति। इसलिए वार्तिक से मुक्ति में चतुर्थी विभक्ति होती है एवं वाक्य बनता है 'मुक्तये हरिं भजति'।

"क्लृपि सम्पद्यमाने च" (वा. 1459)। भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते इत्यादि।
यह भी वार्तिक है। सम्पन्न होना और उत्पन्न होना इन अर्थों में क्लृप् धातु प्रयुक्त होता है। वार्तिक में क्लृप् का अर्थ ग्रहण किया गया है। वार्तिकार्थ :– क्लृप् धातु के प्रयोग में तथा उसके समानार्थक (अर्थात् सम् पद् भू, जन् आदि) धातुओं के प्रयोग में जिसका सम्पादन होता है, उससे चतुर्थी विभक्ति होती है।

"उत्पातेन ज्ञापिते च" (वा. 1460)। यह वार्तिक है।
वार्तिकार्थ :– उत्पात के द्वारा ज्ञापित वस्तु के वाचक शब्द में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण :– 'वाताय कपिला विद्युत्' (भूरे रंग की बिजली ऑधी का सूचक है)। इस कथन में वात की सूचना कपिला विद्युत् से मिल रही है। अतः उत्पात के द्वारा वात का ज्ञान होता है। अतः वात में प्रकृत वार्तिक के द्वारा चतुर्थीविभक्ति होकर वाताय कपिला विद्युत् वाक्य सम्पन्न हो जाता है।

"हितयोगे च" (वा. 1461)। यह वार्तिक है।
वार्तिकार्थ :– हित शब्द के योग में चतुर्थीविभक्ति होती है। अर्थात् जिसके विषय में हित का कथन है, उसी शब्द में चतुर्थी होती है।

उदाहरण :– 'ब्राह्मणाय हितम्' (ब्राह्मण के लिए हितकर)। यहॉ ब्राह्मण के आगे हित का योग होने पर चतुर्थीविभक्ति होकर रूप सिद्ध होता है।

सूत्र – क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः 2/3/14
वृत्ति – क्रियार्थो क्रिया उपपदं यस्य तस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य तुमुनः कर्मणि चतुर्थी स्यात्। फलेभ्यो याति। फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः। नमस्कुर्मो नृसिंहाय। नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः। एवं स्वयम्भुवे नमस्कृत्य इत्यादावपि।
पदविश्लेषण – क्रियायै इदम् क्रियार्था, उपपदं यस्य स क्रियार्थोपपदस्य।
सूत्रार्थ – क्रियार्थ क्रिया है उपपद में जिसकी, उस अप्रयुज्यमान तुमुन् प्रत्ययान्त क्रिया के कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है।

'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' सूत्र से क्रियार्थक क्रिया में भविष्य अर्थ को बताने के लिए उसके समीपस्थ धातु में तुमुन् और ण्वुल् ये दो प्रत्यय होते हैं। ये प्रत्यय तभी होते हैं जब

एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया उपस्थित हो। इसीलिये सूत्र की वृत्तिमें क्रियार्थोपपदस्य कहा गया है। भावार्थ है कि क्रियार्थक क्रिया प्रयोजन है जिसका, ऐसे अप्रयुज्यमान तुमुन् प्रत्यय का शाब्दिक प्रयोग न होने पर भी उसके अर्थ की प्रतीति होने पर उसके अनुक्त कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है। अतः यह सूत्र कर्मसंज्ञाप्रयुक्त द्वितीया का अपवाद है।

उदाहरण :– 'फलेभ्यो याति' (फल लेने के लिए जाता है)। यहाँ फल आहरण क्रिया के लिये गमन क्रिया उपपद है। अर्थात् फलानि आहर्तुं याति इति। तुमन् प्रत्ययान्त आहर्तुम् का प्रयोग नहीं किया गया है। याति पद तुमुन् प्रत्ययान्त आहर्तुम् पद का समीपस्थ पद होने से क्रियार्थोपपद हुआ। अतः फल शब्द में प्रकृत सूत्र से कर्म में प्राप्त द्वितीया को बाधकर चतुर्थीविभक्ति हो जाती है। 'फलेभ्यो याति' यह वाक्य बनता है। वाक्य में तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग नहीं है लेकिन उसका अर्थ प्रतीयमान है।

नमस्कुर्मो नृसिंहाय (नृसिंह भगवान् को अनुकूल करने के लिए नमस्कार करते हैं)। यहाँ नृसिंह भगवान् को अनुकूल करने के लिए नमस्कार क्रिया उपपद है। अर्थात् नृसिंहमनुकूलयितुं नमस्कुर्मः इति। तुमुन् प्रत्ययान्त अनुकूलयितुम् का प्रयोग नहीं किया गया है। कूर्मः पद तुमुन्प्रत्ययान्त अनुकूलयितुम् का समीपस्थ पद होने के कारण क्रियार्थोपपद हुआ। अतः नृसिंह शब्द में प्राप्त द्वितीया को बाधकर सूत्र से चतुर्थीविभक्ति हो जाती है। **'नमस्कुर्मो नृसिंहाय'** यह वाक्य बनता है। वाक्य में तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग नहीं है लेकिन उसका अर्थ प्रतीयमान है।

'स्वयम्भुवे नमस्कृत्य' (ब्रह्मा को अनुकूल करने के लिये नमस्कार करके)। यहाँ पर भी तुमुन्प्रत्ययान्त अनुकूलयितम् का प्रयोग नहीं है किन्तु अर्थ प्रतीयमान है। अतः स्वयम्भू शब्द में प्राप्त द्वितीया को बाधकर चतुर्थीविभक्ति का विधान किया जाता है। इसीलिए 'स्वयम्भुवे नमस्कृत्य' यह वाक्य बनता है।

सूत्र – तुमर्थाच्च भाववचनात् 2/3/15

वृत्ति – भाववचनाश्च (सू. 3180) इति सूत्रेण यो विहितस्तदन्ताच्चतुर्थी स्यात्। यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः।

पदविश्लेषण – तुमुनोऽर्थ इव अर्थो यस्य स तुमर्थस्तस्मात् तुमर्थात् बहुव्रीहिसमासः। भावस्य वचनो भावचनस्तस्मात् षष्ठीतत्पुरुषः। तुमर्थात् पंचम्यन्तं, चाव्ययं, भाववचनात् पंचम्यन्तम्।

सूत्रार्थ – भाववचनाश्च सूत्र से विहित भावार्थक प्रत्ययान्त कर्मवाची शब्दों में चतुर्थी विभक्ति होती है। कृत्प्रकरण में भाववचनाश्च सूत्र से भाव अर्थ में घञ् आदि प्रत्यय कहे गये हैं। तत्प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण प्रकृतसूत्र में है। तुमर्थ अर्थात् तुमुन् प्रत्यय के अर्थ के समानार्थकों ग्रहण किया जाता है। तुमर्थात् शब्द का भाववचनात् के साथ अन्वय है। भाव अर्थ को बताने के लिए भावे सूत्र से अधिकार में घञ् आदि प्रत्यय किये जाते हैं। ऐसे भाववाचक प्रत्ययों का विधान तुमुनर्थ में हो तो उनसे युक्त शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण :– 'यागाय याति' (याग के लिये जाता है)। यहाँ पर यज् धातु से भाववचनाश्च सूत्र के द्वारा तुमुन् के अर्थ में घञ् प्रत्यय होकर याग शब्द बना है। याग शब्द का अर्थ है यष्टुम्। अतः तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में घञ् प्रत्यय होकर याग शब्द निष्पन्न होता है। याग शब्द याति का कर्म भी है। इसलिये याग शब्द में **"तुमर्थाच्च भाववचनात्"** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर 'यागाय याति' वाक्य सिद्ध होता है।

सूत्र – नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च 2/3/17

वृत्ति – एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्। हरये नमः। "उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी" (परिभाषा 103) नमस्करोति देवान्। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। "अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्" (वा. 1462)। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं, प्रभुः समर्थः, शक्त इत्यादि। प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः। तस्मै प्रभवति... (सू 1765)। "स एषां ग्रामणीः" (सू 1878) इति निर्देशात्। तेन प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः इति सिद्धम्। वषडिन्द्राय। चकारः पुनर्विधानार्थः, तेनाशीर्विवक्षायां परामपि "चतुर्थी चाशिषि...." (सू 631) इति षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति। स्वस्ति गोभ्यो भूयात्।

पदविश्लेषणः– नमश्च स्वस्तिश्च स्वाहा च स्वधा च अलं च वषट् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषडः, तेषां योगो नमस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगः तस्मात् नमस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात्।

सूत्रार्थ – नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। इस सूत्र में विधीयमान विभक्ति उपपदविभक्ति है। सूत्रोक्त सभी शब्द अव्यय हैं किन्तु स्वस्ति शब्द अव्यय तथा अनव्यय दोनों प्रकार का प्रयुक्त होता है।

उदाहरण :– 'हरये नमः' (हरि को नमस्कार है)। यहाँ हरि शब्द के योग में नमः उपपद है। अतः इस सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर 'हरये' रूप बनता है।

"उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी"। यह परिभाषा है। परिभाषार्थ – उपपद विभक्ति की अपेक्षा कारक विभक्ति बलवती होती है। विभक्ति दो प्रकार की होती है – कारकविभक्ति और उपपदविभक्ति। क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय होता है उसे कारकविभक्ति कहते हैं। कहा भी गया है – **'क्रियामाश्रित्य जायमाना विभक्तिः कारकविभक्तिः'**। जब किसी शब्द का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय नहीं होता तथा पद के साथ अन्वय होता है तो उसे उपपदविभक्ति कहते हैं। उक्तं च – **'पदमाश्रित्य जायमाना विभक्तिः उपपदविभक्तिः'** एक ही समय एक लक्ष्य में जब दोनों विभक्तियाँ एक साथ प्राप्त होतीं हैं तो उपपदविभक्ति की अपेक्षा कारकविभक्ति बलवती होती है। जैसे – **'नमस्करोति देवान्' (देवों को नमस्कार करता है)**। यहाँ पर क्रिया के साथ अन्वय होने के कारण देव शब्द में द्वितीया विभक्ति प्राप्त है और नमः उपपद का योग होने के कारण **"नमःस्वस्तिस्वाहा......."** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति भी प्राप्त है। इसलिए परिभाषा के द्वारा कारकविभक्ति अर्थात् द्वितीयाविभक्ति का निर्णय किया जाता है। अतः 'देवान्' में द्वितीयाविभक्ति हुयी।

'प्रजाभ्यः स्वस्ति' (प्रजा का कल्याण हो)। यहाँ पर स्वस्तिशब्द प्रजाशब्द से सम्बन्धित है। अतः **"नमःस्वस्तिस्वाहा....."** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर **'प्रजाभ्यः स्वस्ति'** वाक्य बनता है।

'अग्नये स्वाहा' (अग्नि को आहुति है)। यहाँ पर स्वाहा शब्द अग्निशब्द से सम्बन्धित है। अतः **"नमःस्वस्तिस्वाहा......."** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर 'अग्नये स्वाहा' वाक्य बनता है।

'पितृभ्यः स्वधा' (पितरों के लिए अन्नादि पदार्थ हैं)। यहाँ पर स्वधाशब्द पितृशब्द से सम्बन्धित है। अतः **"नमःस्वस्तिस्वाहा......."** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर 'पितृभ्यः स्वधा' वाक्य बनता है।

"अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्"। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थ – प्रकृत सूत्र में अलम् से पर्याप्ति अर्थ अर्थात् समर्थ अर्थ वाले शब्दों का भी ग्रहण होना चाहिए।

दैत्येभ्यो हरिरलम् (दैत्यों को मारने के लिए हरि पर्याप्त हैं)। यहाँ पर प्रकृत वार्तिक के द्वारा अलं का पर्याप्ति इत्यादि अर्थ ग्रहण करने से चतुर्थीविभक्ति हुयी।

प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः। तस्मै प्रभवति.... (सू 1765)। "स एषां ग्रामणीः" (सू 1878) इति निर्देशात्। सूत्रकार अर्थात् पाणिनि जी का आशय है कि प्रभु आदि शब्दों के योग में षष्ठी और चतुर्थीविभक्तियाँ दोनों होती हैं। अतः उन्होंने "तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः" 5.1.101 सूत्र में प्रभवति के योग में चतुर्थी का प्रयोग किया है तथा "स एषां ग्रामणी" 5.2.78 सूत्र में षष्ठी का प्रयोग भी किया है। अतः सूत्रकार के द्वारा प्रभु आदि शब्दों के योग में दोनों विभक्तियों का प्रयोग किया गया है।

उदाहरण :– 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य' (तीनों लोकों का स्वामी बनने को इच्छुक)। यह उदाहरण शिशुपालवध में महाकवि माघ के द्वारा प्रयुक्त किया गया है। प्रभुः बुभूषुः भुवनत्रयस्य इस वाक्य में प्रभु शब्द के योग में भुवनत्रयस्य शब्द में षष्ठी का विधान है।

वषडिन्द्राय (इन्द्र के लिए हवि)। यहाँ पर वषट् शब्द इन्द्र अथवा देवताओं से सम्बन्धित है। अतः इन्द्रशब्द में **"नमःस्वस्तिस्वाहा......."** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति होकर वषडिन्द्राय वाक्य बनता है।

चकारः पुनर्विधानार्थः, तेनाशीर्विवक्षायां परामपि "चतुर्थी चाशिषि...." (सू 631) इति षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति। प्रकृत सूत्र में चकार का ग्रहण करना यह द्योतित करता है कि नमस्, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट् के योग में चतुर्थीविभक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई विभक्ति प्राप्त नहीं होती, किन्तु स्वस्ति शब्द के आशीर्वाद अर्थ का वाचक होने के कारण उसके योग में **"चतुर्थी चाशिषि...." (सू 631)** सूत्र से षष्ठी प्राप्त होती है, लेकिन चकार के विशेष पाठ होने के

कारण षष्ठीविभक्ति को भी बाधकर प्रकृत सूत्र से चतुर्थीविभक्ति ही होती है। अतः **'स्वस्ति गोभ्यो भूयात्'** यह वाक्य सिद्ध होता है।

सूत्र – मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु 2/3/17

वृत्ति – प्राणिवर्जे मन्यतेः कर्मणि चतुर्थी वा स्यात् तिरस्कारे। न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा। श्यना निर्देशात्तनादिकयोगे न। न त्वां तृणं मन्वे। अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम् (वा. 1464) तेन न त्वां नावमन्नं मन्ये इत्यत्राऽप्राणित्वेऽपि चतुर्थी, न त्वां शुने मन्ये इत्यत्र प्राणित्वेऽपि भवत्येव।

पदविश्लेषण – मन्यकर्मणि सप्तम्यन्तम्, अनादरे सप्तम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तम्, अप्राणिषु सप्तम्यन्तम्। अस्मिन् सूत्रे चत्वारि पदानि वर्तन्ते। मन्यस्य कर्म मन्यकर्म, तस्मिन् मन्यकर्मणि षष्ठीतत्पुरुषसमासः। न आदरोऽनादरस्तस्मिन् अनादरे नतत्पुरुषसमासः। न प्राणिनोऽप्राणिनस्तेषु अप्राणिषु।

सूत्रार्थ – अनादर अर्थ होने पर दैवादिक मन् धातु के प्राणिभिन्न अनभिहित कर्म में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है।

प्रकृत सूत्र में अनादर का तात्पर्य केवल आदराभाव ही नहीं अपितु आदर–विरुद्ध अर्थ भी है। अतः निष्कर्षतः तिरस्कार अर्थ निकलता है। सूत्र में श्यन्–विकरणयुक्त मन् धातु का निर्देश है। मन् ज्ञाने धातु से "दिवादिभ्यः श्यन्" सूत्र से दिवादिगणपठित धातुओं से श्यन् हुआ करता है। यहॉ निर्देश इस लिये करना पडा कि मन् धातु का धातुपाठ में दो स्थलों पर पाठ उपलब्ध होता है। मन ज्ञाने दिवादि और मनु अबवोधने तनादि, इन दोनों में से केवल श्यन् विकरणयुक्त दिवादि का ही ग्रहण होता है। इसीलिए तनादिगण पठित मनु अवबोधने धातु का ग्रहण नहीं होता। अतः "न त्वां तृणं मन्वे" इस वाक्य में चतुर्थीविभक्ति नहीं हुयी।

उदाहरण :– 'न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा' (मैं तुम्हें तिनका भी नहीं समझता)। यहॉ पर अनादर के लिए तृणशब्द का प्रयोग किया गया है, जो कि अप्राणी वाचक भी है। अतः तृण में **"मन्यकर्मण्यनादरे..."** सूत्र से चतुर्थीविभक्ति विकल्प से होकर **'न त्वां तृणाय मन्ये'** वाक्य बनता है। चतुर्थीविभक्ति के अभाव में द्वितीयाविभक्ति से युक्त वाक्य बनता है।

सूत्र – श्यना निर्देशात्तनादिकयोगे न। न त्वां तृणं मन्वे।

"नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम्"। यह वार्तिक है। इसका भावार्थ है कि – **"मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु"** सूत्र में पठित 'अप्राणिषु' इस पद को हटाकर 'नौ, काक, अन्न, शुक, शृगाल को वर्जित कर ऐसा कहना चाहिए। अतः 'न त्वां नावम् अन्नं वा मन्ये' इस उदाहरण में प्राणिभिन्न कर्म में भी चतुर्थी नहीं होती और **'न त्वां शुने मन्ये'** इस प्राणिवाचक कर्म में भी **'शुने'** यह चतुर्थी होती है। इसी प्रकार **'न त्वां काकं, शुकं, शृगालं वा मन्ये'** इन उदाहरणों में कर्मभूत काक, शुक, शृगाल इन प्राणिवाचक शब्दों में भी द्वितीया समझनी चाहिये।

सूत्र – गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि 2/3/12

वृत्तिः– अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मण्येते स्तश्चेष्टायाम्। ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। चेष्टायाम् किम्? मनसा हरिं व्रजति। अनध्वनि इति किम्? पन्थानं गच्छति। गन्त्राऽधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः। यदा तूत्पथात्पन्था एवाक्रमितुमिष्यते तदा चतुर्थी भवत्येव, उत्पथेन पथे गच्छति।

पदविश्लेषण :– गत्यर्थकर्मणि सप्तम्यन्तं, द्वितीयचतुर्थ्यौ प्रथमाद्विवचनान्तं, चेष्टायां सप्तम्यन्तं, अनध्वनि सप्तम्यन्तम्। अनभिहिते का अधिकार है।

सूत्रार्थ :– यदि गति शारीरिक व्यापारयुक्त हो और कर्म मार्गवाची न हो तो गत्यर्थक धातुओं के कर्म में द्वितीया और चतुर्थी होती है।

प्रकृत सूत्र में चेष्टायाम् पद गत्यर्थकर्मणि का विशेषण है। अनध्वनि यह निषेधात्मक पद है। अध्वन् शब्द स्वरूपरक नहीं है अपितु अर्थपरक अर्थात् अध्ववाचक सभी शब्द यहॉ गृहीत हैं। गम्, चल्, इण्, या व्रज् आदि धातुयें गति अर्थ वाली हैं। चेष्टायाम् – शारीरिक गति को चेष्टा कहते हैं और तद्भिन्न को अचेष्टा कहते हैं।

उदाहरण :– ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति (गॉव को जाता है)। गम् धातु गत्यर्थक है, गमन चेष्टायुक्त भी है। गॉव मार्गवाची नहीं है और गच्छति का कर्म भी है। अतः गॉव में चतुर्थीविभक्ति प्रकृत सूत्र के द्वारा विकल्प से होती है। ग्रामाय गच्छति वाक्य बनता है। जब चतुर्थीविभक्ति नहीं होगी तो द्वितीयाविभक्ति होकर ग्रामं गच्छति बनेगा। ग्रामशब्द में चतुर्थी एवं द्वितीया दोनों विभक्ति होती हैं।

चेष्टायाम् किम्? मनसा हरिं व्रजति। अत्र शारीरचेष्टायाः अभावान्न द्वितीयाचतुर्थ्यौ, किन्तु द्वितीयैवेति भावः। जब चेष्टात्मिका क्रिया नहीं होगी तो गत्यर्थकर्मणि.....सूत्र की प्रवृत्तिनहीं होगी और मनसा हरिं व्रजति में चेष्टा अर्थात् शारीरिक व्यापार न होने के कारण द्वितीया मात्र होकर हरिं व्रजति यह वाक्य बनता है।

अनध्वनि किम्? पन्थानं गच्छति (मार्ग पर जाता है)। चेष्टा है लेकिन मार्गवाची भी न हो तभी सूत्र की प्रवृत्तिहोती है। यहॉ पर पन्थानं मार्गवाची ही है। अतः गत्यर्थकर्मणि... सूत्र की प्रवृत्तिनहीं हुयी। कर्मणि द्वितीया से द्वितीयाविभक्ति होकर पन्थानं गच्छति वाक्य बनता है।

गन्त्राऽधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः। अर्थात् गमनकर्ता के द्वारा अधिष्ठित मार्ग के सम्बन्ध में ही यह निषेध प्रवृत्त होता है। गन्ता के द्वारा अवस्थित मार्ग के लिये ही यह निषेध है। तात्पर्य यह है कि सूत्रोक्त निषेध उसी मार्ग के सम्बन्ध में प्रवृत्त होता है, जिस मार्ग पर गमनकर्ता

चल रहा हो। जैसे कि पन्थानं गच्छति। किन्तु जब व्यक्ति बुरे मार्ग से अच्छे मार्ग पर आने की चेष्टा करता है तो चतुर्थी होती है। अर्थात् चतुर्थी का निषेध नहीं होता है।

उदाहरण :– उत्पथेन पथे गच्छति (उबड़–खाबड़ वाले मार्ग से अच्छे मार्ग पर जाने की चेष्टा करता है)। यहाँ पर पथे में चतुर्थीविभक्ति हुयी।

8.4 सारांश

प्रस्तुत ईकाई में छात्रों के कारक प्रकरण के अंतर्गत आने वाली अध्ययन हेतु सामग्री प्रस्तुत की गयी है। इस ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त छात्रों को करण कारक (तृतीयाविभक्ति) और सम्प्रदान कारक (चतुर्थीविभक्ति) का अच्छी प्रकार से ज्ञान प्राप्त होगा। वाक्यों में तृतीयाविभक्ति एवं चतुर्थीविभक्ति का प्रयोग कहॉ होता है यह अच्छी प्रकार से जान सकेंगे एवं संस्कृत में वाक्य बनाने के तृतीयाविभक्ति और चतुर्थीविभक्ति का प्रयोग किन–किन शब्दों अथवा धातुओं के योग में होता है यह हम समझ सकेंगे। विभक्ति रूप भी इकाई में दिए गए हैं जिनसे प्रक्रिया एवं स्वरूप के समझने में आपको सहायता मिली होगी।

8.5 उपयोगी पुस्तकें

5. व्याकरण सिद्धांतकौमुदी (भट्टोजिदीक्षित कृत) – हिंदी टीका – गोविन्दाचार्य
6. व्याकरण सिद्धांतकौमुदी (भट्टोजिदीक्षित कृत) – बाल मनोरमा टीका सहित
7. व्याकरण सिद्धांतकौमुदी (भट्टोजिदीक्षित कृत) –तत्वबोधिनी टीका सहित
8. व्याकरण सिद्धांतकौमुदी (भट्टोजिदीक्षित कृत) – हिंदी व्याख्या : धरानन्द घिल्डियाल

8.6 अभ्यास प्रश्न

1. 'इत्थंभूतलक्षणे' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. 'अक्ष्णा काणः' उदाहरण को विभक्ति निर्देशपूर्वक समझाइए।
3. 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'यागाय याति' उदाहरण को विभक्ति निर्देशपूर्वक समझाइए।

इकाई 9 कारक प्रकरण – पंचमी विभक्ति

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- कारक प्रकरण की पंचमी विभक्ति से परिचित हो सकेंगे।
- पंचमी विभक्ति का वाक्यात्मक प्रयोग कर सकेंगे।
- पंचमी विभक्ति विधायक सूत्रों की वृत्ति तथा व्याख्या से प्रयोग रूपों को जान सकेंगे।
- अपादान संज्ञा का लक्षण समझकर उसके प्रयोग में कौशल प्राप्त करेंगे।
- अपादान संज्ञा एवं पंचमी विभक्ति के विशेष नियम, अपवाद एवं वार्तिकों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे; तथा
- सूत्रों का अर्थ एवं व्याख्या को समझ पायेंगें।

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पहले आप वैयाकरण–सिद्धान्कौमुदी के कारकप्रकरण में प्रथमा विभक्ति, द्वितीया विभक्ति, तृतीया विभक्ति, चतुर्थी विभक्ति के विशेष एवं सामान्य नियमों (सूत्रों) का अध्ययन कर चुके हैं साथ में कर्मसंज्ञा, करणसंज्ञा, सम्प्रदान संज्ञा करने वाले सामान्य एवं विशेष नियमों तथा वार्तिकों का अध्ययन भी आपने कर लिया है। इस इकाई में अपादान का लक्षण, अपादान संज्ञा करने वाले सामान्य एवं विशेष सूत्रों तथा वार्तिको का अध्ययन आप करेंगें। अपादान संज्ञक शब्दों से पंचमी विभक्ति होती है इसका भी अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। अपादान संज्ञा करने वाले सूत्रों की वार्तिकों की व्याख्या भी आप सूत्रों के साथ पढेंगे।

पंचमी विभक्ति करने वाले सूत्रों की व्याख्या आप इस इकाई में विशेष प्रयोगों सहित आगे पढेंगे।

9.2 पंचमी विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

सूत्र – ध्रुवमपायेऽपादानम् 1/4/24

वृत्ति – अपायो विश्लेषः, तस्मिन्साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकमपादानं स्यात्।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – यह अपादान संज्ञा करने वाला सूत्र है। ध्रुवम्, अपाये, अपादानम् यह तीन पदवाला यह सूत्र है। 'ध्रु' गतिस्थैर्ययोः' इस धातु से पचादित्वाद् अच्प्रत्यय तथा कुटादित्वात् ङित्त्व होने के कारण अवङादेश करके 'ध्रुवम्' शब्द बनता है। अपायशब्द का अर्थ है विश्लेष। ध्रुव शब्द का अर्थ है अवधिभूत। दो संयुक्त अर्थो में एक के चलने से विश्लेष होता है। उन दोनों में जो चलन का आश्रय नहीं है वह ध्रुव कहलाता है तथा उसकी अपादान संज्ञा होती है। इस प्रकार 'प्रकृतधात्वर्थानाश्रयत्वे सति तज्जन्यविभागाश्रयों ध्रुवम्' यह ध्रुव का (अवधि का) लक्षण होता है। अर्थात् जो वाक्योपात्त धात्वर्थ व्यापार का अनाश्रय होते हुए धात्वर्थजन्यविभाग का आश्रय हो उसे ध्रुव कहते हैं। इस प्रकार दो संयुक्त अर्थो में एक के चलने से जो विश्लेष है उनमें जो चलन का अनाश्रय अवधिभूत है उसकी अपादानसंज्ञा होती है। इस प्रकार यह सूत्रार्थ निष्पन्न होता है।

उदाहरण – वृक्षात् पर्णं पतति। (वृक्ष से पत्ता गिरता है) यहाँ पर वृक्ष और पत्ता संयुक्त है। और पत्ते (पर्ण) में चलन है। इस चलन का आश्रय पर्ण (पत्ता) है और अनाश्रय वृक्ष है। इसलिये प्रकृत सूत्र से वृक्ष की अपादान संज्ञा होती है।

सूत्र – अपादाने पंचमी 1/4/24

वृत्ति – ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात्पतति। कारकं किम्–वृक्षस्य पर्णं पतति।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – अपादान अर्थ में पंचमी विभक्ति का विधान करने वाला यह विधि सूत्र है। अपादाने यह पंचम्यन्त पद है, तथा पंचमी यह प्रथमान्त पद है। दो पद वाला यह सूत्र है। अपादान अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से पंचमी विभक्ति होती है। यह सूत्र का अर्थ है।

उदाहरण – ग्रामादायति – कस्मादागच्छति (कहाँ से आते हो), इस आकांक्षा विषय के होने से ग्राम अवधि है तथा इस ग्राम की 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' इस सूत्र से अपादान संज्ञा होती है। 'अपादाने पंचमी' इस प्रकृत सूत्र से ग्राम से पंचमी विभक्ति होती है।

धावतोऽश्वात्पतति – पूर्व में अचल ध्रुव का उदाहरण देकर श्रीमद्भट्टोजिदीक्षित जी यह चल ध्रुव का उदाहरण देते हैं। अपाय में जो उदासीन (पतन क्रिया का अनाश्रय) वह चाहे चल हो या अचल हो उसकी अपादान संज्ञा होती है। इसी बात को भर्तृहरि ने लिखा है – 'अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम्' इत्यादि। 'कस्मात्पतति' इस आकांक्षा का विषय होने से

पतन क्रिया का अनाश्रय होने के कारण चल अश्व की भी अपादान संज्ञा होती हैं और उससे 'अपादाने पंचमी' इस सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है।

अब यहाँ यह शंका होती है कि अपादान संज्ञा विधायक सूत्र में कारकग्रहण क्यों किया गया। अर्थात् अवधिभूत कारक की अपादान संज्ञा होती है। ऐसा क्यों कहा गया। इसका उत्तर है कि 'वृक्षस्य पर्णं पतति' यहाँ वृक्ष की अपादान संज्ञा न हो इसलिये यहाँ कारक ग्रहण किया गया है। यहाँ वृक्ष की सम्बन्धित्वेन विवक्षा होने के कारण कारक नहीं है। इसलिए कारक ग्रहण के कारण इसकी अपादान संज्ञा नहीं होती है।

वार्तिक – जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वा. 1079)

वृत्ति – पापाज्जुगुप्सते, विरमति। धर्मात् प्रमाद्यति।

वार्तिकानुवाद एवं व्याख्या – इस वार्तिक के द्वारा अपादान संज्ञा की जाती है। 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानाम्' यह षष्ठी विभक्ति का बहुवचन है। 'उपसंख्यानम्' यह प्रथमान्त पद है। इस सूत्र में दो पद है। अपादन संज्ञा कहनी चाहिए, यह 'उपसंख्यानम्' का अर्थ है। जुगुप्सा=विरति (रूकना), प्रमाद=अनवधानता (ध्यानाभाव) इन अर्थों वाले धातु के कारक की अपादान संज्ञा होती है। यह वार्तिक का अर्थ है। संयोगपूर्वक विश्लेष को विभाग कहते हैं, वह यहाँ नहीं है। इसलिए सूत्र से अपादान संज्ञा प्राप्त नहीं है। इसलिये वार्तिक का आरम्भ किया गया है। भाष्याकार ने बुद्धिपरिकल्पि अपाय को मानकर इस वार्तिक का प्रत्याख्यान कर दिया है।

उदाहरण – पापाज्जुगुप्सते। (पाप से घृणा करता है) पापाद् विरमति। (पाप से रुकता है)। धर्मात् प्रमाद्यति। (धर्म से प्रमाद करता है।) ये तीनों उदाहरण हैं। इन उदाहरणों में प्रकृत वार्तिक से पाप और धर्म की अपादान संज्ञा होती है और 'अपादाने पंचमी' इस सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है।

सूत्र – भीत्रार्थानां भयहेतुः 1/4/25

वृत्ति – भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात्। चोराद्बिभेति। चोरात्त्रायते। भयहेतुः किम्? अरण्ये विभेति, त्रायते वा।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' इस सूत्र से 'अपादानम्' इस पद की अनुवृत्तिहै। यह अपादान संज्ञा करने वाला सूत्र है। 'भीत्रार्थानां' यह षष्ठ्यन्त पद है। 'भयहेतुः' यह प्रथमान्त पद है। भय के कारण को भयहेतु कहते हैं। चोर से डरता है, यहाँ पर भय का कारण चोर है। इस प्रकार भयार्थक और त्राणार्थक=रक्षणार्थक का प्रयोग होने पर भयहेतु (भय के कारण) की अपादान संज्ञा होती है। यह सूत्रार्थ निष्पन्न होता है। भाष्यकार ने बुद्धिपरिकल्पित अपाय को मानकर इस सूत्र का प्रत्याख्यान कर दिया है।

उदाहरण – चोराद्बिभेति – (चोर से डरता है)। चोरात्त्रायते (चोर से रक्षा करता है)। यहाँ पर भयहेतु चोर है। इसलिये प्रकृतसूत्र से चोर की अपादान संज्ञा होती है तथा अपादाने पंचमी से पंचमीविभक्ति होकर उक्त उदाहरण की सिद्धि होती है।

अब यहाँ यह शंका होती है कि इस सूत्र में भयहेतुः यह पद क्यों रखा है। इसका उत्तर देते हुये दीक्षित जी लिखते हैं कि अरण्ये विभेति, त्रायते वा। (जंगल में डरता है या रक्षा करता है) इस उदाहरण में अरण्यः (जंगल) भयहेतु नहीं है। इसकी अपादान संज्ञा प्रकृत सूत्र से न हो जाए, इसलिये इस सूत्र में 'भयहेतु' यह पद रखा है।

सूत्र – पराजेरसोढः 1/4/26

वृत्ति– पराजेः प्रयोगेऽसह्योऽर्थोऽपादानं स्यात्।

अध्ययनात्पराजयते। ग्लायतीत्यर्थः। असोढः किम्? शत्रून् पराजयते। अभिभवतीत्यर्थः।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्यान – यह अपादान संज्ञा करने वाला सूत्र है। 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' इस सूत्र से 'अपादानम्' इस पद की अनुवृत्तिहोती है। 'पराजेः' यह परा उपसर्गपूर्वक जि धातु के षष्ठी एकवचन का रूप है। 'असोढः' यह प्रथमान्त पद है। यह धातु से क्त प्रत्यय करने पर 'सह्+त' इस स्थिति में 'धत्वढत्वष्टुत्वढलोप' करने के बाद 'सहिवहोरोदवर्णस्य' इस सूत्र से ओकार करने पर 'सोढ' यह कृदन्तशब्द निष्पन्न होता है। क्तप्रत्ययार्थ भूतकाल यहाँ विवक्षित नहीं है। इस प्रकार सोढ का सह्य अर्थ है। न सोढः असोढः का असह्य यह अर्थ है। इस प्रकार परा उपसर्ग पूर्वक जि धातु का प्रयोग होने पर असह्य अर्थ की अपादान संज्ञा होती है। यह सूत्र का अर्थ होता है। जब असह्य से निवृत्त होता है, यह अर्थ विवक्षित होगा तो 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' इस सूत्र से ही अपादान संज्ञा सिद्ध है। हेतुतृतीया का अपवाद यह सूत्र है।

उदाहरण – अध्ययनात्पराजयते। यद्यपि जि धातु परस्मैपदी है फिर भी 'विपराभ्यां जेः' इस सूत्र से आत्मनेपद होता हैं इस पराजयते में आत्मनेपद होता है। इस उदाहरण में परा उपसर्ग पूर्वक जि धातु का प्रयोग होता है तथा असह्य अर्थ अध्ययन है। इसलिये अध्ययन की प्रकृत सूत्र से अपादान संज्ञा होती है तथा अपादाने पंचमी से पंचमी विभक्ति होती है।

अब यहाँ यह शंका होती है कि इस सूत्र असोढ=असह्य पद की क्या आवश्यकता है। तो इसका उत्त्र देते हुये दीक्षित जी कहते है कि शत्रून् पराजयते (शत्रुओं को पराजित करता है) यहाँ पर 'शत्रु' असह्य नहीं है परन्तु सह्य है तभी तो पराजित करता है। यहाँ शत्रु की अपादन संज्ञा न हो जाय इसलिये 'असोढः' यह पद इस सूत्र में रखा गया है।

सूत्र – वारणार्थानामीप्सितः 1/4/26

वृत्ति– प्रवृत्तिविघातो वारणम्। वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितोऽर्थोऽपादानं स्यात्। यवेभ्यो गां वारयति। ईप्सितः किम्–यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – यह अपादान संज्ञा विधायक सूत्र है। वारणार्थानाम्, ईप्सितः यह पदच्छेद है। दो पदवाला यह सूत्र है। पूर्वसूत्र से 'अपादानम्' इस पद की अनुवृत्तिहोती है। प्रवृत्तिके विघात (रोकने) को वारण कहते हैं। इस प्रकार वारणार्थक धातु के प्रयोग होने पर जो ईप्सित अर्थ उसकी अपादान संज्ञा होती है। यह सूत्रार्थ होता है। संयोगपूर्वक विश्लेष नहीं होने के कारण पूर्वसूत्र से अपादानसंज्ञा अप्राप्त है। इसलिए इस सूत्र का आरम्भ किया गया है।

उदाहरण – यवेभ्यो गां वारयति। (यवों में प्रवृत्तिकी इच्छावाली गौ को प्रवृत्तिसे विमुख करता है)। इस उदाहरण में यवों के संरक्षणीय होने से 'यव' ईप्सित है। इसलिये इसकी प्रकृतसूत्र से अपादानसंज्ञा होकर पंचमी विभक्ति के बहुवचन में 'यवेभ्यः' इस रूप की सिद्धि होती है, तथा गौ के परकीय (दूसरे का) होने से अनीप्सित (उदासीन) होने के कारण गौ की 'तथायुक्तं चानीप्सितम्' इस सूत्र से कर्मसंज्ञा तथा उससे द्वितीया विभक्ति होने से 'गाम्' इस रूप की सिद्धि होती है।

जब यव (परकीय) दूसरे का है, गौ अपना है तब भी वारण सम्भव है। क्योंकि यवों के विनाश से अधर्म होगा, तथा यवस्वामी गौ को बाध लेगा एवं यवस्वामी गोस्वामी को दण्डित करेगा। इस हेतु से 'यव' ईप्सित है, उसकी प्रकृत सूत्र से अपादान संज्ञा होती है, तथा गौ के ईप्सिततम होने से 'कर्तुरीरिसततमं कर्म' इस सूत्र से गौ की कर्म संज्ञा होती है, तथा द्वितीया विभक्ति होती है।

अब यहाँ यह शंका होती है कि इस सूत्र में ईप्सित पद क्यों रखा गया है। इसका उत्तर देते हुये दीक्षित जी लिखते हैं कि 'यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे' इस उदाहरण में क्षेत्र के ईप्सित नहीं होने से क्षेत्र की अपादानसंज्ञा नहीं होती है। यदि इस सूत्र में 'ईप्सित' यह पद नहीं होता तो क्षेत्र की अपादान संज्ञा हो जाती। वह न हो इसलिये इस सूत्र में ईप्सित पद रखा गया है।

सूत्र – अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति 1/4/28

वृत्ति – व्यवधाने सति यत्कर्तृकस्यात्मनो दर्शनस्याभावमिच्छति तदपादानं स्यात्। मातुर्निलीयते कृष्णः। अन्तर्धौ किम्? चौरान् न दिदृक्षते। इच्छतिग्रहणं किम्–अदर्शनेच्छायां सत्यां सत्यपि दर्शने यथा स्यात्। (देवदत्तात् यज्ञदत्तो निलीयते)।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा अपादानसंज्ञा की जाती है। अन्तर्धौ, येन, अदर्शनम्, इच्छति यह पदच्छेद है। अन्तर्धौ का अर्थ है, व्यवधान होने पर। 'येन' इसमें कर्ता में तृतीया विभक्ति है। 'न दर्शनम् अदर्शनम्' इसमें नञ्तत्पुरूष समास है। दर्शन का अभावः यह अर्थ है। 'येन' इस कर्तृतृतीया के अनुरोध से 'आत्मनः' इस कर्मषष्ठ्यन्त पद का अध्याहार किया जाता है; नहीं तो येन में 'कर्तृकर्मणोःकृति' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति हो जाती। 'आत्मनः' इस कर्मषष्ठ्यन्त पद में 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' से कर्म में ही षष्ठी है। इस प्रकार 'येन' में कर्तृतृतीया निर्बाध है। इस प्रकार व्यवधान होने पर जो कोई जिस कर्ता से अपने को नहीं दिखाना (दर्शनाभाव को) चाहता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यह सूत्रार्थ होता है।

कर्तृतृतीया का यह सूत्र अपवाद है। भाष्यकार ने बुद्धिकृत अपादानत्व को मानकर इस सूत्र का भी प्रत्यारव्यान कर दिया है।

उदाहरण – मातुर्निलीयते कृष्णः। (कृष्ण माता से अपने को छिपाते है) इस उदाहरण में माता दर्शन की कर्त्री है, अर्थात् माता कृष्ण को देखना चाहती है। लेकिन कृष्ण किवाड़ (दरवाजे) के पीछे अपने को छिपाते हैं। इस प्रकार मातृकर्तृक दर्शनाभाव को कृष्ण चाहते हैं। इसलिए 'मातृ' की प्रकृत सूत्र से अपादान संज्ञा होती है तथा 'अपादाने पंचमी' से पंचमी विभक्ति होती है। भाष्य में बुद्धिकृत–अपादान को मानकर सूत्र का प्रत्याख्यान किया गया है।

अब यहाँ यह शंका होती है कि इस सूत्र में 'अन्तर्धौ' इस पद की क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर देते हुए दीक्षित जी कहते हैं कि 'चौरान् न दिदृक्षते' (चोरों को नहीं देखना नहीं चाहता है) चोर सामने आ गया तो डर से आँखे बन्द करता है, यह उदाहरण का तात्पर्य है। यहाँ अन्तर्धि (व्यवधान) नहीं होने के कारण 'चौर' की अपादान संज्ञा नहीं होती है। इसीलिए सूत्र में अन्तर्धिग्रहण किया गया है।

अब दूसरी शंका होती है कि इस सूत्र में 'इच्छति' ग्रहण क्यों किया गया है। तो इसका उत्तर दीक्षित जी देते है कि अदर्शन की इच्छा रहने पर यदि दर्शन हो गया तो भी अपादान संज्ञा हो जाय इसलिए सूत्र में इच्छति ग्रहण किया गया है। जैसे देवदत्तात् यज्ञदत्तो निलीयते (देवदत्त से यज्ञदत्त छिपता है)। इस उदाहरण में यद्यपि यज्ञदत्त किसी के व्यवधान में छिपा है तथा चाहता है कि देवदत्त मुझे न देखे। लेकिन देवदत्त यज्ञदत्त को देख लेता है। फिर भी देवदत्त की अपादान संज्ञा होती है, इच्छतिग्रहण के कारण।

सूत्र – आख्यातोपयोगे 1/4/29

वृत्ति – नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्संज्ञः स्यात्। उपाध्यायादधीते। उपयोगे किम्–नटस्य गाथां शृणोति।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा अपादानसंज्ञा की जाती है। आख्याता=वक्ता है। उपयोग का अर्थ है, नियमपूर्वक विद्यास्वीकरण। पूर्वसूत्र 'अपादानम्' इस पद की अनुवृत्तिहोती है। इस प्रकार नियमपूर्वक यदि विद्या को ग्रहण किया जाना अर्थ हो तो वक्ता की अपादानसंज्ञा होती है। यह सूत्रार्थ होता है।

उदाहरण – उपाध्यायादधीते। (उपाध्याय से अध्ययन करता है)। इस उदाहरण में नियमपूर्वक उपाध्याय के उच्चारण का अनुच्चारण करता है, यह तात्पर्य है। इसलिये उपाध्याय की अपादानसंज्ञा तथा पंचमी विभक्ति होती है। भाष्य में यह सूत्र प्रत्याख्यात है।

अब यहाँ शंका होती है कि इस सूत्र में 'उपयोगे' पद क्यों रखा है। तो जहाँ पर नियमपूर्वक विद्याग्रहण अर्थ न हो वहाँ अपादानसंज्ञा को रोकने के लिए सूत्र में उपयोगे पद को रखा गया है। जैसे– नटस्य गाथां शृणोति। यहाँ नट से नियम पूर्वक गाथा का ग्रहण नहीं करता है। अर्थात ताली बजाकर कोलाहल करके गाथा को सुनता है इसलिए नट की अपादानसंज्ञा नहीं हुयी।

सूत्र – जनिकर्तुः प्रकृतिः 1/4/30

वृत्ति – जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात्। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – जनि का अर्थ है उत्त्पत्तिः। जनेः कर्ता ऐसा विग्रह करके शेषषष्ठी होने के कारण षष्ठीतत्पुरूष समास होता है। प्रकृति शब्द का अर्थ है हेतु=कारण। पूर्वसूत्र से 'अपादानम्' इस पद की अनुवृत्तिहोती है। यह सूत्रार्थ है। इस सूत्र के द्वारा अपादान संज्ञा की जाती है।

उदाहरण – ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते। (हिरण्यगर्भ से प्रजा उत्पन्न होती है)। इस उदाहरण में प्रजा का मूलकारण ब्रह्म है। इसलिए ब्रह्म की प्रकृत सूत्र से अपादानसंज्ञा, तथा पंचमी विभक्ति होती है।

सूत्र – भुवः प्रभवः 1/4/31

वृत्ति – भवनं भूः। भूकर्तुः प्रभवस्तथा। हिमवतो गङ्गा प्रभवति। तत्र प्रकाशत इत्यर्थः।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा भी अपादानसंज्ञा की जाती है। पूर्वसूत्र में समासनिर्दिष्ट होने पर भी कर्तृपद में (एकदेश में) स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल से इस सूत्र में कर्तृपद की अनुवृत्तिहो जाती है। भवनम् ऐसा विग्रह करके संपदादित्वात् क्विप् प्रत्यय करके 'भूः' इस पद की सिद्धि होती है। 'भुवः कर्ता तस्य' ऐसा विग्रह करके 'भूकर्तुः' इस षष्ठ्यन्त पद की सिद्धि होती है। प्रभव का अर्थ है प्रथम प्रकाश स्थान। इस प्रकार भवन (होने) के कर्ता का प्रथम प्रकाश स्थान की अपादान संज्ञा होती है। यह सूत्रार्थ निष्पन्न होता है। भाष्य में अपक्रमण करता है (अप्रक्रामति) ऐसा अर्थ स्वीकार करके इस सूत्र की ध्रुवमपायेऽपादानम्' इसी से गतार्थता की है।

उदाहरण – हिमवतो गङ्गा प्रभवति। हिमालय से गङ्गा प्रकट होती है। यहाँ प्रभवति क्रिया का कर्ता गड्ंगा है। और गङ्गारूप कर्ता का प्रथम प्रकाश स्थान (प्रभव) हिमवत् है। इसलिए इसकी प्रकृत सूत्र से अपादन संज्ञा तथा पंचमी विभक्ति होकर 'हिमवतः' इस पंचम्यन्त पद की सिद्धि होती है।

वार्तिक – ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (1474–1475)

वृत्ति– प्रासादात्प्रेक्षते, आसनात्प्रेक्षते। प्रसादमारूह्य, आसन उपविश्य प्रेक्षत इत्यर्थः। श्वशुराज्जिह्रेति। श्वशुरं वीक्ष्येत्यर्थः।

वार्तिकानुवाद एवं व्याख्या – इस वार्तिक के द्वारा पंचमी विभक्ति की जाती है। यहाँ ल्यब्ग्रहण–ल्यबर्थ का बोधक है। इससे क्त्वा का भी लोप होने पर पंचमी विभक्ति होगी। ल्यबन्त का लोप=अदर्शन=अप्रयोग होने पर ल्यबन्त के प्रति जो कर्म अथवा अधिकरण उससे पंचमी विभक्ति होती है। यह वार्तिक का अर्थ है।

उदाहरण – प्रासादात्प्रेक्षते – (महल को प्राप्त कर देखता है)। यहाँ 'आरुह्य' इस ल्यबन्त का अप्रयोग है, तथा इस ल्यबन्त का कर्म प्रासाद है, इससे पंचमी विभक्ति होती है।

आसनात्प्रेक्षते – (आसन में बैठकर देखता है)। इस उदाहरण में 'उपविश्य' इस ल्यबन्त का अप्रयोग है। तथा इसका अधिकरण=आधार आसन है। इससे पंचमी विभक्ति होती है।

श्वशुराज्जिह्रेति – (श्वशुर को देखकर लज्जा करती है) इस उदाहरण में वीक्ष्य (देखकर) इस ल्यबन्त का अप्रयोग है। तथा इसका कर्म श्वशुर है। इसलिए श्वशुर पद से पंचमी विभक्ति होती है।

कर्म एवम् अधिकरण अर्थ को बताने के लिए मूल में लिखते हैं कि 'प्रसादमारुह्य, आसन अपविश्य प्रेक्षते इत्यर्थः। श्वशुरं वीक्ष्येत्यर्थः; उक्त उदाहरण में आरुह्य, उपविश्य, वीक्ष्य इस ल्यबन्त का अप्रयोग है यह प्रतीत होता है।

वार्तिक – गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम् (5041)

वृत्ति – कस्मात्त्वम्, नद्याः।

वार्तिकानुवाद एवं व्याख्या – पूर्व वार्तिक में ल्यबन्त के कर्म एवम् अधिकरण से पंचमी विभक्ति का विधान किया गया। तो प्रश्न हुआ कि जब ल्यबन्त का अप्रयोग है तो ल्यबन्तार्थ के प्रति कर्म और अधिकरण की अवगति कैसे होगी। तो इसका उत्तर देने के लिये ही 'गम्यमानापि...' इस वार्तिक को बनाया गया है। इस वार्तिक का अर्थ है– गम्यमान=प्रतीयमान=प्रतीत होने वाली क्रिया भी कारक विभक्ति का निमित्त (कारण) होती है। अर्थात वाक्य में यदि प्रयोग न हो तो भी, किसी प्रकार प्रतीत होने पर भी जो क्रिया वह कारकविभक्ति को बनाने में कारण होती है।

उदाहरण – 'कस्मात्त्वम्' नद्याः। (किससे तुम) नदी से। इस उदाहरण में 'आगतः' (आये हो) यह क्रिया पद प्रतीयमान है। 'आगतः' इस प्रतीयमान क्रिया के कारण 'कस्मात्' एवम् 'नद्याः' इन दोनो पदों में कारक विभक्ति=पंचमी विभक्ति हुयी है।

वार्तिक – यतश्चाध्वकालनिमनं ततः पंचमी (वा. 1477);

तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ (वा. 1479);

कालात्सप्तमी वक्तव्या (वा 1478)

वृत्ति – वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे।

वार्तिकानुवाद एवं व्याख्या – प्रथम वार्तिक के द्वारा पंचमी विभक्ति का विधान किया जाता है। 'यतः' में 'येन' ऐसा विग्रह करके तृतीयान्त से तसि प्रत्यय किया गया है। अध्वा=मार्ग। काल=समय। इस प्रकार जिस अवधि के द्वारा मार्ग एवम् समय का निमान=परिच्छेद=परिमाण–इयत्ता की प्रतीति हो, उससे पंचमी विभक्ति होती है। यह वार्तिक का अर्थ होता है।

द्वितीय वार्तिक में तत्पद से पंचम्यन्त का ग्रहण होता है। इस प्रकार पंचम्यन्त से युक्त अध्ववाची प्रातिपदिक से प्रथमा और सप्तमीविभक्ति होती है। यह द्वितीय वार्तिक का अर्थ है। तृतीय वार्तिक का अर्थ है कि पंचम्यन्त से युक्त जो कालवाची प्रातिपदिक है उससे सप्तमीविभक्ति होती है।

उदाहरण – वनाद् ग्रामों योजनं योजने वा। वन से गाँव एक योजन पर है (एक कोस है)। इस उदाहरण में वन से ग्राम की दूरी बतायी जा रही है इसलिए अवधिभूत वन से पंचमी विभक्ति प्रथम वार्तिक द्वारा की गयी है; तथा अध्ववाची योजन शब्द से द्वितीय वार्तिक द्वारा प्रथमा एवम् सप्तमी विभक्ति की गयी है।

कार्तिक्याः आग्रहायणीमासे। (कार्तिक से अगहन एक मास है)। इस उदाहरण में प्रथम वार्तिक से 'कार्तिकी' शब्द से पंचमीविभक्ति हुयी है; तथा तृतीय वार्तिक से कालवाची मासशब्द से सप्तमी विभक्ति हुयी है।

सूत्र – अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते। 2/3/29

वृत्ति – एतैर्योगे पंचमी स्यात्। अन्येत्यर्थग्रहणम्। इतरग्रहणं प्रपंचार्थम्। अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्। आराद्वनात्। ऋते कृष्णात्। पूर्वो ग्रामात्। दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः। तेन संप्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि भवति। चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः। अवयववाचियोगे तु न। 'तस्य परमाम्रेडितम्' इति निर्देशात्। पूर्वं कायस्य। अंचूत्तरपदस्य तु दिक्शब्दत्वेऽपि 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' इति षष्ठीं बाधितुं पृथग्ग्रहणम्। प्राक्, प्रत्यग् वा ग्रामात्। आच्–दक्षिणा ग्रामात्। आहि–दक्षिणाहि ग्रामात्। 'अपादाने पंचमी' इति सूत्रे 'कार्तिक्याः प्रभृति' इति भाष्य प्रयोगात्प्रभृत्यर्थयोगे पंचमी। भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः। 'अपपरिबहिः...–' इति समासविधानात् ज्ञापकाद् बहिर्योगे पंचमी। ग्रामाद्बहिः।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – पंचमी विभक्ति का विधान करने वाला यह विधिसूत्र है। समस्त एक पद वाला यह सूत्र है। (1) अन्य का भिन्न अर्थ है। (2) आरात् का दूर और समीप अर्थ है। (3) इतर का भिन्न अर्थ है। (4) ऋते का बिना अर्थ है। (5) दिक् शब्द=दिशा अर्थ में देखा गया पूर्व, उत्तर आदि शब्द अर्थ है। (6) अंचूत्तरपद=अंचु धातु उत्तर पद के रूप में जिस शब्द में हो वे शब्द लिए जाते हैं। जैसे प्राक्, प्रत्यक् आदि। (7) आच्, यह प्रत्यय है। आच्प्रत्ययान्त शब्द के योग में है। (8) आदि, यह भी प्रत्यय है। आहिप्रत्ययान्तशब्द के योग में है।

उपर्युक्त आठों के योग में पंचमी विभक्ति होती है। यह सूत्र का अर्थ है। अन्य के द्वारा अन्यार्थकशब्द का ग्रहण होता है। अन्य का अर्थ भी भिन्न है, इतर भी अन्यार्थक है। इसलिए अन्य से इतर का ग्रहण सिद्ध है। इतर ग्रहण प्रपंचार्थ है। इसलिये अन्य भिन्न इतर आदि अन्यार्थक शब्दों के योग में पंचमी विभक्ति जाननी चाहिए।

उदाहरण –

1) अन्यार्थक – अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्। कृष्ण प्रतियोगी है जिसका अर्थ भेद वाला है। यह इसका अर्थ है। अर्थात कृष्ण से भिन्न है।

2) इतर का भी उदाहरण यहाँ आ गया।

3) आराद्वनात्। (वन के समीप अथवा दूर) 'आरात्।' अव्यय के योग में वन से प्रकृत सूत्र से पंचमी विभक्ति हुयी।

4) ऋते कृष्णात्। (कृष्ण के बिना) ऋते के योग में कृष्ण से पंचमी विभक्ति।

5) दिक्शब्द। पूर्वो ग्रामात्। ग्राम के पूर्व। दिशावाचीपूर्व शब्द के योग में ग्राम शब्द से पंचमी विभक्ति। यहाँ पर दिक्शब्द से दिशा अर्थ में देखा गया जो शब्द ('दिशि दृष्टः' इस विग्रह के कारण) उस शब्द का ग्रहण किया जाता है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि शब्द का ग्रहण किया गया है। यह भाव है कि पूर्वादिशब्द इस समय दिशा अर्थ में न हो देश, काल, वाची भी हों तो भी पूर्वादिशब्दों के योग में यह सूत्र पंचमी विभक्ति करता है। जैसे– चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः। चैत्र के पूर्वकाल में फाल्गुन मास है। यहाँ पूर्व शब्द दिशा वाची नहीं है। किन्तु कालवाची है। फिर भी चैत्रवाद से पंचमी विभक्ति होती है। यही दिशि दृष्टः दिक्शब्दः का तात्पर्य है।

   अवयववाची यदि पूर्वादिशब्द हो तो उसके योग में पंचमी विभक्ति नहीं होती है। किन्तु षष्ठी विभक्ति ही होती है। 'तस्य परमाम्रेडितम्' यही सूत्र इसमें प्रमाण है। यहाँ पर (अवयववाची) के योग में 'तस्य' यह षष्ठी विभक्ति देखे जाने से पता चलता है। इसलिए 'पूर्वं कायस्य' (काय=शरीर का पूर्व अवयव) यहाँ पर पूर्व अवयववाची के योग में काय से पंचमी विभक्ति नहीं हुयी। किन्तु षष्ठी विभक्ति ही हुयी है।

6) अंचूत्तर पद–1 : प्राक्, प्रत्यक् आदि शब्द है। यह प्राक्, प्रत्यक् आदि शब्द भी यद्यपि दिक्शब्द है। दिक्शब्दत्वेन ही इनके योग में भी पंचमी विभक्ति हो सकती थी फिर भी 'षष्ठ्यतसर्थ...' इस सूत्र से प्राक् प्रत्यक् आदि शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है। उसको बाधने के लिए इस सूत्र में अंचूत्तर पद का ग्रहण किया गया है। प्राक् प्रत्यग् वा ग्रामात्। यहाँ पर 'अंचेर्लुक' इस सूत्र से प्राक् और प्रत्यक शब्द से पर में अतसर्थक अस्ताति–प्रत्यय का लुक हुआ है। इसलिए 'षष्ठ्यतसर्थ...' इस सूत्र से प्राप्त षष्ठी को बाँधकर इस सूत्र से ग्राम शब्द से पंचमी विभक्ति हुयी है।

7) आच्। दक्षिणा ग्रामात्। (ग्राम के दक्षिण दिशा में) यहाँ दक्षिणाशब्द आच्प्रत्ययान्त है। इसके याग में ग्राम से पंचमी विभक्ति हुयी है।

8) आहि। दक्षिणाहि ग्रामात्। (ग्राम के दक्षिण दिशा में)। यहाँ दक्षिणाहि शब्द आदि प्रत्ययान्त है। इसके योग में ग्राम से पंचमी विभक्ति इस सूत्र द्वारा की गयी है। दक्षिणा, दक्षिणाहि, अर्थात, आजाहिप्रत्ययान्त शब्द भी दिशा वाची है। इसलिए दिक्शब्दत्वेन ही इसके योग में भी पंचमी विभक्ति हो जाती। इसलिए सूत्र में इन दोनों का भी प्रयोजन चिन्त्य है।

प्रभृति के योग में पंचमी विभक्ति होती है। इसमें प्रमाण है। 'अपादाने पंचमी' इस सूत्र में 'कार्तिक्याः प्रभृति' यह भाष्य प्रयोग। यहाँ प्रभृतिशब्द के योग में भाष्यकार ने कार्तिकी शब्द से (कार्तिक्याः) पंचमी विभक्ति का जो विधान किया है उसी से पता चलता है कि प्रभृत्यर्थ के योग में पंचमी विभक्ति होती है। इसलिए भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः। इस उदाहरण में प्रभृति के योग में भव से पंचमी विभक्ति होती है।

बहिशब्द के योग में भी पंचमी विभक्ति होती है। इसमें प्रमाण है। भगवान पाणिनि का 'अपपरिबहि...' इस सूत्र के द्वारा पंचम्यन्त के साथ बहिशब्द का समासविधान करना ही प्रमाण है। (ज्ञापन है)। ग्रामाद्बहिः ग्राम के बाहर। यहाँ बहिशब्द के योग में ग्रामशब्द से पंचमी विभक्ति 'अपरिबहि...' इत्यादि सूत्र के ज्ञापन से होती है।

सूत्र – अपपरी वर्जने 1/4/88

वृत्ति– एतौवर्जने कर्मप्रवचनीयौ स्तः।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – कर्मप्रवचनीय संज्ञा का विधान करने वाला यह सूत्र है। कर्मप्रवचनीयाः' इस अधिकार सूत्र की अनुवृत्ति होती है; तथा प्रथमा द्विवचन में विपरिणाम (बदल) जाता है। 'अपपरी' यह भी प्रथमा का द्विवचन है। इसी कारण से कर्मप्रवचनीय द्विवचन में बदलता है। दो पदवाला यह सूत्र है। वर्जन का अर्थ है छोड़ना। इस प्रकार वर्जन अर्थवाले अप, परि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यह सूत्रार्थ होता है।

उदाहरण – अप हरेः परि हरेः संसारः (हरि को छोड़कर संसार है)। यहाँ पर अप और परि वर्जनार्थक है। इसलिए अप, परि की 'अपपरी वर्जने' इस सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। कर्मप्रवचनीय संज्ञा का प्रयोजन 'हरेः' में पंचमी विभक्ति का विधान पंचम्यपाङपरिभिः इस अग्रिम सूत्र से होना है। इस सूत्र में वर्जने देने के कारक परिषिञ्चति इस प्रयोग में परि की ('वर्जनार्थक नहीं होने के कारण) कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं हुयी तथा उपसर्ग संज्ञा ही परि की रहती है। इस कारण 'उपसर्गात्सुनोति...' इत्यादि सूत्र से षत्व होता है।

सूत्र – आङ्मर्यादावचने 1/4/89

वृत्ति– आङ्मर्यादायामुक्तसंज्ञः स्यात्। वचनग्रहणादभिविधावपि।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा भी कर्मप्रवचनीयसंज्ञा की जाती है। यहाँ पर भी 'कर्मप्रवचनीयाः' इस सूत्र का अधिकार है। 'मर्यादायाम्' ऐसा ही सूत्र कर सकते थे। वचनग्रहण क्यों किया। इसका उत्तर मूल में ही दीक्षित जी दिया कि 'वचन' ग्रहण के कारण 'अभिविधि' अर्थ भी लिया जाता है। इसमें हेतु यह है कि 'मर्यादा उच्यते यत्र=यस्मिन् सूत्रे' अर्थात् मर्यादा जिस सूत्र में कहा गया है वह सूत्र मर्यादावचन से लिया जाता है। इस प्रकार 'मर्यादावचन' से 'आङ्मर्यादाभिविध्योः' यह सूत्र विवक्षित है। इस सूत्र में दोनों पद है। तेन बिना मर्यादा। तेन सहेत्यभिविधिः। निर्दिश्यमान अवधि को छोड़कर मर्यादा होती है; तथा निर्दिश्यमान को

लेकर अभिविधि होती है। इस प्रकार मर्यादा एवम् अभिविधि अर्थ में आङ् की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है। यह सूत्रार्थ होता है।

उदाहरण –

आ मुक्तेः संसारः (मुक्ति के पहले तक संसार है)। इस उदाहरण में निर्दिश्यमान अवधि मुक्ति है। उसको छोड़कर संसार है। इसलिए यहाँ मर्यादा अर्थ में आङ् की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है तथा 'पंचम्यपाङ्परिभिः' इस अग्रिम सूत्र से आङ् का योग होने के कारण 'मुक्ति' से पंचमी विभक्ति होती है।

अभिविधि – आ सकलाद् ब्रह्म। (सकल=सम्पूर्ण के सहित ब्रह्म है) यहाँ निर्दिश्यमान सकल को लेकर यह अर्थ है। इसलिए अभिविधि अर्थ है। और आङ् अभिविधि अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक है। तथा इसके योग में अग्रिम 'पंचम्यपाङ्परिभिः' इस सूत्र से सकल शब्द से पंचमी विभक्ति हुयी है।

सूत्र – पंचम्यपाङ्परिभिः 2/3/10

वृत्ति– एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पंचमी स्यात्। अपहरेः, परि हरेः संसारः। परिरत्र वर्जने। लक्षणादौ तु हरिं परि। आ मुक्तेः संसारः। आ सकलाद् ब्रह्म।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा पंचमी विभक्ति होती है। यह विधिसूत्र है। 'पंचमी' यह प्रथमान्त पद है। तथा 'अपाङ्परिभिः' यह तृतीयान्त पद है। इस प्रकार अप, आङ्, परि इन तीनों कर्मप्रवचनीय संज्ञक के योग में पंचमी विभक्ति होती है। यह सूत्रार्थ है।

उदाहरण : अप–अप हरेः संसारः। 'अपपरी वर्जने' से अप की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तथा प्रकृत सूत्र से हरि में पंचमी विभक्ति की गयी है।

परि– परि हरेः संसारः। परि यहाँ वर्जन अर्थ में है। इसलिए 'अपपरी वर्जने' से कर्मप्रवचनीय संज्ञा; तथा प्रकृत सूत्र से हरि शब्द से पंचमी विभक्ति हुयी है। लक्षणादि अर्थ में यदि 'परि' होगा तो 'लक्षणेत्थम्भूता...' इस सूत्र से उसकी कर्मप्रचनीयसंज्ञा होगी। तथा 'कर्मप्रवचनीयुक्ते...' इत्यादि सूत्र से द्वितीय विभक्ति होगी। इसलिए वहाँ हरिं परि यह उदाहरण होगा।

मर्यादा अर्थ में आङ्– आ मुक्तेः संसार– यहाँ 'आङ्मर्यादा...' इस सूत्र से आङ् की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है; तथा इस सूत्र से आङ् के योग में मुक्ति से पंचमी विभक्ति होती है।

अभिविधि अर्थ में आङ्– आ सकलाद् ब्रह्म। पूर्ववत् जानना चाहिए।

सूत्र – प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः 1/4/92

वृत्ति– एतयोरर्थयोः प्रतिरूक्तसंज्ञःस्यात्।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा की जाती है। यह संज्ञासूत्र है। सदृशः प्रतिनिधिः। जो सदृश=समान है वह प्रतिनिधि कहलाता है। दत्तस्य प्रतिनिर्यातनम् प्रतिदानम्। जो दिया गया है उसके स्थान पर वापस करना प्रतिदान कहलाता है। इन दोनों अर्थों में प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यह सूत्र का अर्थ है।

उदाहरण– प्रतिनिधि– प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति। प्रद्युम्न कृष्ण के सदृश है। यहाँ पर प्रतिनिधि अर्थ में प्रति है। इसलिए इस सूत्र से इसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है; तथा इसके योग में 'प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्' इस अग्रिम सूत्र से कृष्ण से पंचमी विभक्ति होती है।

प्रतिदान– तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्। ऋण के रूप में लिये गये तिल के स्थान में माष (उड़द) को लौटाता है। यहाँ प्रति प्रतिदान अर्थ में है। इसलिए इसकी प्रकृत सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है; तथा इसके योग में अग्रिम सूत्र से तिल से पंचमी विभक्ति होती है।

सूत्र – प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् 2/3/11

वृत्ति– अत्र कर्मप्रवचनीयैर्योगे पंचमी स्यात्। प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा पंचमी विभक्ति की जाती है। पंचम्यपाङ्परिभिः 2/3/10 इस पूर्व सूत्र से 'पंचमी'; इस पद की अनुवृत्तिहोती है। 'यस्मात्' यह षष्ठ्यर्थ में पंचमी है। इसका 'यस्य' यह अर्थ समझना चाहिये। इस प्रकार जिसका प्रतिनिधि अथवा प्रतिदान हो उससे पंचमी विभक्ति होती है, कर्मप्रवचनीय का योग होने पर यह सूत्रार्थ होता है।

उदाहरण – प्रतिनिधि– प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति। युद्धादि में प्रद्युम्न कृष्ण के सदृश हैं। पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्रतिदान– तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्। इसको भी पूर्ववत् जानना चाहिये।

सूत्र – अकर्तयृणे पंचमी 2/3/24

वृत्ति– कर्तृवर्जितं यदृणं हेतुभूतं ततः पंचमी स्यात्। शताद्बद्धः। अकर्तरि किम्–शतेनबन्धितः।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा पंचमी विभक्ति का विधान किया जाना है। 'हेतौ' इस सूत्र की अनुवृत्तिहोती है। 'अकर्तरि' ऋणे, पंचमी यह पदच्छेद है। इस प्रकार कर्तृसंज्ञा रहित हेतु रूप जो ऋण है उससे पंचमी विभक्ति होती है। यह सूत्र हेतुतृतीया का अपवाद है।

उदाहरण – शताद्बद्ध। ऋणदाता (उत्तमर्ण) के द्वारा ऋणग्रहीता (अधमर्ण) सुवर्णशत् के कारण बाँधा गया। निश्चित समय में ऋण नहीं लौटाने के कारण बाँधा गया यह अर्थ है। यहाँ प्रकृत सूत्र से शतशब्द् से पंचमी विभक्ति होती है।

अब यहाँ यह शंका होती है कि इस सूत्र में अकर्तरि (कर्तृसंज्ञा रहित) इस पद की क्या आवश्यकता है। तो इसका उत्तर देते हुए दीक्षित जी ने मूल में लिखा कि शतेन बन्धितः। यहाँ 'शत' कर्तृसंज्ञक है। इसलिए इससे पंचमी विभक्ति न हो जाय इस हेतु से यहाँ अकर्तरि पद रखा गया है। 'बन्धितः' इस पद में 'हेतुमति च' इस सूत्र से विच् प्रत्यय हुआ है। हेतुमत्ण्यन्त 'बन्धि' धातु से कर्म में क्तप्रत्यय करने पर 'बन्धितः' यह कृदन्त शब्द बनता है। यहाँ पर उत्तमर्ण प्रयोज्यकर्ता है तथा 'शत' प्रयोजक कर्ता है। इसलिए शत की 'तत्प्रयोजको

हेतुश्च' इस सूत्र से हेतुसंज्ञा एवम् कर्त् संज्ञा होती है। यदि इस सूत्र में 'अकर्तरि' यह पद नहीं होता तो शतशब्द से कर्तृतृतीया को (कर्तृकरणयोस्तृतीया) बाँधकर पंचमी विभक्ति हो जाती, वह न हो इसलिए इस सूत्र में अकर्तरि पद रखा गया है।

सूत्र – विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् 2/3/25

वृत्ति – गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पंचमी वा स्यात्। जाड्याद् जाड्येन वा बद्धः। गुणे किम्? धनेन कुलम्। अस्त्रियां किम्– बुद्ध्य मुक्तः। 'विभाषा' इति योगविभागाद् अगुणे स्त्रियां च क्वचित्। धूमादग्निमान्। नास्ति घटोऽनुपलब्धेः।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – पंचमीविभक्ति का विधान करने वाला यह विधिसूत्र है। 'हेतौ' इस सूत्र की अनुवृत्तिहोती है। 'हेतौ' इस सूत्र का अपवाद है। विभाषा, गुणे, अस्त्रियाम् यह पदच्छेद है। न स्त्रियाम् 'अस्त्रियाम्', यहाँ नञ्तत्पुरूषसमास है। इस प्रकार स्त्रीलिङ्ग भिन्न गुणवाचक हेतुवाचक शब्द से पंचमी विभक्ति होती है, विकल्प से यह सूत्रार्थ होता है।

उदाहरण – जाड्याद् जाड्येन वा बद्धः। जड़ता के कारण बंधा है। इस उदाहरण में जाड्य गुण एवम् हेतु है; तथा स्त्रीलिग्ङ भिन्न है। इसलिए इस सूत्र से विकल्प पंचमी विभक्ति होती है। जब पंचमी विभक्ति नहीं होती तब 'हेतौ' सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। इस प्रकार जाड्याद्, जाड्येन इस रूप की सिद्धि होती है।

अब यहाँ शंका होती है कि इस सूत्र में 'गुणे' इस पद की क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर यह है कि 'धनेन कुलम्' यहाँ धनशब्द से विकल्प से पंचमी विभक्ति न हो जाय, इसलिए यहाँ 'गुणे' यह पद रखा गया है। धनशब्द द्रव्यवाची है। गुणवाची नहीं है।

अब दूसरी शंका यह होती है कि इस सूत्र में 'अस्त्रियाम्' इस पद की क्या आवश्यकता है? तो इसका उत्तर यह है कि 'बुद्ध्या मुक्तः' यहाँ पर 'बुद्धि' स्त्रीलिङ्ग शब्द से विकल्प से पंचमी विभक्ति न हो जाय इसलिए यहाँ 'अस्त्रियाम्' यह पद रखा है। बुद्धि शब्द क्तिन्प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द है। हेतौ सूत्र से नित्य तृतीया विभक्ति होती है।

इस एक सूत्र को योग विभाग के द्वारा दो सूत्र में बांट लिया जाता है। (1) विभाषा (2) गुणेऽस्त्रियाम्। द्वितीय सूत्र में विभाषा की अनुवृत्तिकरके पूर्ववत् अर्थ होता है। पूर्ववत उदाहरण भी जानना चाहिए।

परन्तु 'विभाषा' इस प्रथम सूत्र में 'हेतौ' 'पंचमी' इन दोनों पदों की अनुवृत्तिहोती है। इस प्रकार 'विभाषा' इस सूत्र का हेतु अर्थ में पंचमी विभक्ति विकल्प से होती है। यह अर्थ होता है। 'योगविभाग इष्टसिध्यर्थः' योग विभाग इष्ट प्रयोग की सिद्धि के लिए होता है। इस नियम से अगुण वाचकशब्द से तथा स्त्रीलिङ्ग में भी कहीं कहीं विकल्प से पंचमी विभक्ति होती है।

उदाहरण – जैसे

(1) धूमाद् धूमेन वा अग्निमान्। इस उदाहरण में धूम द्रव्यवाचक है, गुणवाचक नहीं है। परन्तु फिर भी धूम शब्द से विकल्प से पंचमी विभक्ति होती है।

(2) नास्ति घटोऽनुपलब्धेः। अनुपलब्धिशब्द यद्यपि स्त्रीलिङ्ग शब्द है फिर भी 'विभाषा' योग विभाग के कारण अनुपलब्धि शब्द से पंचमी विभक्ति होती है।

सूत्र – पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् 2/3/32

वृत्ति– एभिर्योगे तृतीया स्यात् पंचमीद्वितीये च। अन्यतरस्यांग्रहणं समुच्चयार्थम्, पंचमीद्वितीये चानुवतते। पृथग् रामेण, रामाद् रामं वा। एवं बिना नाना।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा विकल्प से तृतीया पंचमी तथा द्वितीया विभक्ति का विधान किया जाता है। 'अपादाने पंचमी' इस सूत्र से 'पंचमी' इस पद की तथा 'एनपा द्वितीया' इस सूत्र से 'द्वितीया' इस पद की अनुवृत्तिहोती है। 'अन्यतरस्याम्' का अर्थ समुच्चय है। इस पद के कारण ही तीनों विभक्ति का समावेश होता है। इस प्रकार पृथक, नाना, बिना के योग में तृतीया, पंचमी, द्वितीया, विभक्ति होती है। यह सूत्रार्थ होता है।

उदाहरण – पृथग् रामेण, रामाद्, रामं वा। राम से भिन्नवाला। यहाँ पृथग् के योग में रामशब्द से प्रकृत सूत्र द्वारा तृतीया, पंचमी द्वितीया विभक्ति होकर उक्त रूप की सिद्धि होती है। इसी प्रकार रामेण रामाद् रामं विना, नाना इस उदाहरण को भी जानना चाहिए।

सूत्र – करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्ववचनस्य 2/3/33

वृत्ति– एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे तृतीयापंचम्यौ स्तः। स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः। द्रव्ये तु स्तोकेन विषेण हतः।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – यह तृतीया, पंचमी विभक्ति का विधान करने वाला विधिसूत्र है। सत्व का अर्थ है द्रव्य। असत्व का अर्थ है अद्रव्य। 'पृथग्विनानाना...' इस सूत्र से 'अन्यतरस्याम्' पद की तथा अपादाने पंचमी 'से पंचमी' इस पद की अनुवृत्तिहोती है। इस प्रकार करण में पंचमी विकल्प से होती है। पंचमी विभक्ति के अभाव में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से करण में तृतीया सिद्ध ही है।

स्तोक=थोड़ा। अल्प=थोड़ा। (कम) कृच्छ्र=कष्ट। कतिपय=कुछ। इस प्रकार स्तोक, अल्प, कृच्छ्र कतिपय इन चारों असत्ववाचक शब्दों से करण में तृतीया पंचमी विभक्ति होती है। यह सूत्र का अर्थ होता है।

उदाहरण – स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः। अल्प प्रयास से मुक्त हुआ। यहाँ स्तोक शब्द अद्रव्यवाचक है; तथा करण है। इसलिए इस सूत्र से पंचमी तृतीया विभक्ति होकर उक्त रूप की सिद्धि होती है। यहाँ यह समझना चाहिये कि यह सूत्र विकल्प से पंचमी विभक्ति करता है। तृतीया 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से ही होती है।

इसी प्रकार अल्पेन, अल्पेन, अल्पाद्वा मुक्तः। कृच्छ्रेन कृच्छ्राद्वा मुक्तः। कतिपयेन कतिपयाद्वा मुक्तः; इत्यादि उदाहरणों को भी जानना चाहिए।

अब यहाँ यह शंका होती है कि 'असत्ववचन' इस पद की इस सूत्र में क्या आवश्यकता है; तो इसका उत्तर यह जानना चाहिए कि सत्व=द्रव्य अर्थ होने पर पंचमी विभक्ति न हो जाय

इसलिए इस सूत्र में 'असत्ववचन' यह पद रखा गया है। इसी बात को बताने के लिए दीक्षित जी लिखते है कि 'द्रव्ये तु स्तोकेन विषेण हतः'। यहाँ स्तोकशब्द द्रव्यवाचक है इसलिए यहाँ केवल तृतीया विभक्ति ही होती है; न कि पंचमी।

सूत्र – दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च 2/3/35

वृत्ति– एभ्यो द्वितीयास्यात्, चात् पंचमीतृतीये च। प्रातिपदिकार्थमात्रे विधिरयम्। ग्रामस्य दूरं, दूरात् दूरेण वा, अन्तिकम्, अन्तिकाद्, अन्तिकेन वा। असत्ववचनस्य इत्यनुवृत्तेर्नेह दूरः पन्थाः।

सूत्रानुवाद एवं व्याख्या – इस सूत्र के द्वारा द्वितीया, पंचमी, तृतीया विभक्ति का विधान किया जाता है। यह विधिसूत्र है। दूरान्तिकार्थेभ्यः, द्वितीया, च, यह तीन पद इस सूत्र में है। 'च' से व्यवहित पंचमी, तृतीया का समुच्चय किया जाता है। इस सूत्र के द्वारा प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा को बाधकर द्वितीया, पंचमी, तृतीया विभक्ति का विधान किया जाता है। इस बात को बतलाने के लिए दीक्षित जी ने लिखा 'प्रातिपदिकार्थमात्रे विधिरयम्' इति। इस प्रकार दूरार्थक एवम् अन्तिकार्थक शब्द से द्वितीया, पंचमी एवम् तृतीया विभक्ति होती है। यह सूत्रार्थ होता है।

उदाहरण – ग्रामस्य दूरं, दूराद् दूरेण वा। ग्रामस्य अन्तिकम् अन्तिकाद्, अन्तिकेन वा। ग्राम से दूर, एवम् पास यह उक्त उदाहरण का अर्थ है। यहाँ दूर एवम् अन्तिक शब्द से क्रमशः द्वितीया, पंचमी और तृतीया विभक्ति का विधान प्रकृत सूत्र से किया गया है।

इस सूत्र में 'करणे च स्तोकाल्प...' (2/3/33) इस पूर्व सूत्र से 'असत्ववचनस्य' इस पद की अनुवृत्तिहोती है। जिसके कारण 'दूरः पन्थाः' इस उदाहरण में दूर शब्द से द्वितीया आदि विभक्तियाँ नहीं हुयी है। किन्तु प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति हुयी है। यहाँ दूर शब्द सत्व=द्रव्य वाचक है।

9.3 सारांश

इस इकाई में कारक प्रकरण के अंतर्गत पंचमी विभक्ति के विधायक सूत्रों, वर्तिकों के अर्थ और व्याख्या संबंधी अध्ययन आपने किया। अपादान की स्पष्ट लक्षण प्रतीति को आपने उदाहरणों द्वारा स्पष्ट भी किया। कुछ अपवाद नियम भी आपने जानें कि क्यों विशेष अवस्था में पंचमी विभक्ति का विधान होता है। सूत्रानुवाद और व्याख्या द्वारा विशषे योग स्थितियों को भी आपने जाना (अरात्, ऋते, आहि इत्यादि)। आशा है इकाई के अध्ययनोपरांत आप यह समझ गए होंगे कि पंचमी विभक्ति का सामान्य विधान कहाँ–कहाँ होता है; और कहाँ–कहाँ यह अपवाद स्वरूप होता है, और कहाँ–कहाँ नहीं होता है।

9.4 शब्दावली

ध्रुव	=	अवधिभूत
अपाय	=	विश्लेष
कारक	=	क्रियाजनक
जुगुप्सा	=	घृणा
प्रमाद	=	अनवधान (ध्यान न देना)
असोढ	=	असह्य
वारण	=	प्रवृत्तिका विघात
अन्तर्धि	=	व्यवधान
उपयोग	=	नियम पूर्वक विद्या का ग्रहण करना।
जनि	=	जायमान
प्रभव	=	प्रथम प्रकाश स्थान
ऋते	=	विना
वर्जन	=	छोड़कर
जाड्य	=	मूर्खता (जड़ का भाव)

9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी
2. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (प्रथम भाग)
   (बालमनोरमा तत्त्वबोधिनी टीका सहित)
3. प्रौढमनोरमा (कारकप्रकरण)

9.6 बोध एवं अभ्यास प्रश्न

1. 'आख्यातोपयोगे' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. 'प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति' उदाहरण को विभक्ति निर्देशपूर्वक समझाइए।
3. 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'यवेभ्यो गां वारयति' उदाहरण को विभक्ति निर्देशपूर्वक समझाइए।

इकाई 10 कारक प्रकरण – षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 षष्ठी विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

10.3 सप्तमी विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

10.4 सारांश

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- कारक प्रकरण की षष्ठी व सप्तमी विभक्ति के सूत्रों से परिचित हो सकेंगे;
- षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति के प्रयोग में निपुणता प्राप्त कर सकेंगे;
- षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति से सम्बन्धित विशेष नियम, अपवाद तथा वार्तिकों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे; तथा
- षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति के प्रयोगों को व्यवहार में ला सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियो! व्याकरण के पाठ्यक्रय का यह खण्ड कारक प्रकरण पर आधारित है। इस खण्ड में आप सिद्धान्त कौमुदी के आधार पर कारक प्रकरण का अध्ययन करेंगे। पूर्व की इकाइयों में आपने प्रथमा द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी एवं पंचमी विभक्ति से सम्बन्धित सूत्रों का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति से सम्बन्धित सूत्रों एवं वार्तिकों उनके नियम, अपवाद आदि का अध्ययन करेंगे। सम्बन्ध की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति एवं अधिकरण के अर्थ में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। आइए अब हम षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति से सम्बन्धित सूत्रों, उसके निषेधक सूत्रों तथा वार्तिकों का विस्तृत अध्ययन करें।

10.2 षष्ठी विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

सूत्र – षष्ठी शेषे 2/3/50

वृत्ति – कारकप्रातिपादिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषः। तत्र षष्ठी स्यात्। राज्ञः पुरुष। कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठयेव।

सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति। एधोदकस्योपस्कुरूते। भजे शम्भोश्चरणयोः। फलानां तृप्तः।

अर्थ एवं व्याख्या – यह षष्ठी विभक्ति विधायक सूत्र है। 'षष्ठी' यह प्रथमान्त पद है, 'शेषे' यह सप्तम्यन्त पद है। 'उक्तादन्यः शेषः' इस नियम के अनुसार जो कह दिया गया है वह उक्त कहलाता है तथा जो कुछ कहना अभी अवशिष्ट है वह शेष कहलाता है। यहाँ पर प्रातिपादिकार्थ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान तथा अधिकरण का कथन अर्थात् विधान पहले किया जा चुका है अतः ये उक्त हुए। इनसे जो शेष बच गया वह है 'स्वस्वामिभावादिसम्बन्ध'। इस प्रकार सूत्र के 'शेषे' इस पद से सम्बन्ध का ग्रहण किया जाता है। इस तरह 'स्वस्वामिभावादिसम्बन्ध' विशेष की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण – राज्ञः पुरुषः (राजा का आदमी) – यहाँ पर राजा स्वामी है तथा पुरुष स्व (सेवक) है। अतः स्वस्वामिभावसम्बन्ध मानकर प्रकृत सूत्र से राजन् शब्द में षष्ठी विभक्ति प्रवृत्त हुई है।

कर्म आदि में भी सम्बन्ध मात्र की विवक्षा (बोलने वाले की इच्छा) होने पर षष्ठी विभक्ति होती है अर्थात् जब वक्ता को ईप्सिततमत्व, साधकतमत्व, विश्लेष आदि बताना अभीष्ट न हो किन्तु उनमें सम्बन्ध मात्र में कथन इष्ट हो तो उससे षष्ठी विभक्ति होती है तथा वहाँ द्वितीया आदि विभक्तियाँ नहीं होती हैं। सतां गतम् (सज्जनों का गमन), सर्पिषो जानीते (घी के निमित प्रवृत्त होता है), मातुः स्मरति (माता का स्मरण करता है), एधोदकस्योपस्कुरूते (लकड़ी जल का गुण ग्रहण करता है), भजे शम्भोश्चरणयोः (शम्भु के चरण का भजन करता हूँ), फलानां तृप्तः (फल सम्बन्धी तृप्ति) यहाँ पर क्रमशः तृतीया, तृतीया, द्वितीया, द्वितीया, द्वितीया, तृतीया की अविवक्षा करने पर सतां, सर्पिषः, मातुः दकस्य, शम्भो, फलानां में षष्ठी विभक्ति हुई है।

सूत्र – षष्ठी हेतुप्रयोगे 2/3/26

वृत्ति – हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी स्यात्। अन्नस्य हेतोर्वसति।

अर्थ एवं व्याख्या – यहाँ षष्ठी प्रथमान्त पद है तथा 'हेतुप्रयोगे' यह सप्तम्यन्त पद है। इस सूत्र में 'हेतौ' सूत्र की अनुवृत्ति होती है। इस सूत्र से होने वाली षष्ठी विभक्ति 'हेतौ' सूत्र से प्राप्त तृतीया का अपवाद है। इस प्रकार हेतु शब्द का प्रयोग होते हुए यदि हेतु अर्थ भी द्योतित हो तो षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण– अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न के हेतु से रहता है)– यहाँ हेतु शब्द का साक्षात् प्रयोग है और रहने का हेतु अन्न है। अतः अन्न शब्द में प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

सूत्र – सर्वनाम्नस्तृतीया च 2/3/27

वृत्ति – सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया स्यात् षष्ठी च। केन हेतुना वसति। कस्य हेतोः।

अर्थ एवं व्याख्या – 'सर्वनाम्नः' षष्ठयन्त पद, 'तृतीया' प्रथमान्त पद, 'च' अव्यय पद है। इस प्रकार यह त्रिपदात्मक सूत्र है। यहाँ 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' तथा 'हेतौ' सूत्रों को अनुवृत्ति होती है। यह सूत्र 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' सूत्र का अपवाद है। हेतुवाची सर्वनाम शब्द के प्रयोग में तथा हेतु शब्द के प्रयोग में सर्वनाम शब्द एवं हेतु शब्द में तृतीया और षष्ठी विभक्तियाँ होती हैं।

उदाहरण – केन हेतुना वसति? कस्य हेतोः? (किस हेतु से रहता है) यहाँ सर्वनामवाची 'किम्' शब्द है और उसमें 'सर्वनाम्नस्तृतीया च' सूत्र से तृतीया विभक्ति होने पर 'केन' तथा विभक्ति होने पर 'कस्य' रूप बनता है।

वार्तिक – निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्

वृत्ति – किं निमितं वसति, केन निमितेन, कस्मै निमित्ताय इत्यादि। एवं किम् कारणम्, को हेतुः, किम् प्रयोजनम् इत्यादि। प्रायग्रहणादसर्वनाम्नः प्रथमद्वितीये न स्तः। ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः। ज्ञानाय निमित्ताय इत्यादि।

अर्थ एवं व्याख्या – यहाँ विभक्ति का प्रकरण चल रहा है। 'सर्वासाम्' पद के अनुरोध से 'विभक्तीनाम्' पद का अध्याहार कर लिया जाता है। निमित शब्द या उसके पर्याय शब्दों का प्रयोग होने पर हेतु द्योतक शब्द तथा तत्समानाधिकरण शब्द दोनों से प्रायः सभी विभक्तियों का विधान होता है।

उदाहरण–

किम् निमित्तं वसति? (किस निमित्त को रहता है?)
केन मिनित्तेन वसति? (किस निमित्त से रहता है?)
कस्मै निमित्ताय वसति? (किस निमित्त के लिए रहता है?)
कस्माद् निमित्ताद वसति? (किस निमित्त से रहता है?)
कस्य निमित्तस्य वसति? (किस निमित्त का रहता है?)
कस्मिन् निमित्त वसति? (किस निमित्त में रहता है?)

उक्त सभी उदाहरणों में सर्वनामसंज्ञक किम् शब्द तथा उसके समानाधिकरण निमित्त शब्द से क्रमशः प्रथमा से लेकर सप्तमी विभक्तियाँ हुई हैं।

प्रकृत वार्तिक में 'निमित्तपर्यायप्रयोगे' कहा गया है। यहाँ पर निमित्त शब्द का अर्थग्रहण भी होता है। फलतः निमित्त शब्द के पर्यायावाची कारण, प्रयोजन हेतु शब्दों से प्रायः सभी विभक्तियाँ हो सकती हैं। अतः किं कारणम्? को हेतुः? किं प्रयोजनम।? इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

प्रकृत वार्तिक में प्राय शब्द के ग्रहण से यह सूचित होता है कि सर्वनाम से अतिरिक्त यदि कोई अन्य समानाधिकरण शब्द हो तो प्रथमा और द्वितीया को छोड़कर अन्य सभी विभक्तियों का प्रयोग होता है। अतः ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः, ज्ञानाय निमित्तय हरिः सेव्यः (ज्ञान के निमित्त से हरि सेवनीय हैं)। इन दोनों वाक्यों में सर्वनामसंज्ञक शब्द न होने के कारण प्रथमा, द्वितीया, विभक्ति नहीं हुई है किन्तु तृतीया और चतुर्थी विभक्ति हुई है।

सूत्र – षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन 2/3/30

वृत्ति – एतद्योगे षष्ठी स्यात्। 'दिक्शब्द...' इति पंचम्या अपवादः। ग्रामस्य दक्षिणतः, पुरः, पुरस्तात्, उपरि, उपरिष्टात्।

अर्थ एवं व्याख्या – यहाँ 'षष्ठी' यह प्रथमान्त पद है। अतसः अर्थः अतसर्थः, षष्ठी तदपुरूष। अतसर्थस्य इव अर्थो यस्य विग्रह करके अमध्यपदलोपी समास होकर अतसर्थ शब्द बना है। अतसर्थश्चासां प्रत्ययः अतसर्थप्रत्ययः, कर्मधारय समास। तेन अतसर्थप्रत्ययेन, यह तृतीयान्त पद है। इस प्रकार इस सूत्र में दो पद हैं। यह सूत्र "अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते" इस सूत्र से प्राप्त पंचमी विभक्ति का अपवाद है। अतसुच्, अस्, अस्ताति, रिल्, रिष्टात् ये सभी अतसर्थ प्रत्यय हैं। इस प्रकार अतस् प्रत्यय तथा उसी अर्थ में होने वाले अन्य प्रत्यय अन्त में हों तो ऐसे शब्दों के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण – ग्रामस्य दक्षिणतः (गाँव से दक्षिण की ओर)
ग्रामस्य पुरः (गाँव के सामने)
ग्रामस्य पुरस्तात् (गाँव के सामने)
ग्रामस्योपरि (गाँव के ऊपर)
ग्रामस्योपरिष्टात् (गाँव के ऊपर)

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः अतसुच्, अस्, अस्ताति, रिल्, रिष्टात् आदि अतसर्थ प्रत्ययों के योग में ग्राम शब्द से षष्ठी होती है।

सूत्र – एनपा द्वितीया 2/3/31

वृत्ति – एनबन्तेन योगे द्वितीया स्यात्। एनपेति योगविभागात् षष्ठ्यीय। दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा। एवमुत्तरेण।

अर्थ एवं व्याख्या – 'एनपा' तृतीयान्त पद तथा 'द्वितीया' प्रथमान्त पद है। इस प्रकार इस सूत्र में दो पद हैं। यहाँ 'एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः' सूत्र से विहित एनप् प्रत्यय का ग्रहण है। एनप् प्रत्यय भी अतसर्थ प्रत्यय है। अतः इसके योग में 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' सूत्र से षष्ठी

विभक्ति प्राप्त थी तथापि उसको बाधकर यह सूत्र प्रवृत्त होता है। इस प्रकार एनप् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

प्रकृत सूत्र का योगविभाग किया जाता है। एक सूत्र 'एपा' और दूसरा सूत्र 'द्वितीया' होता है। योगविभक्त प्रथम भाग 'एनपा' में 'षष्ठी' पद की अनुवृत्ति करके इसका अर्थ होता है– एनप् प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी होती है। इस प्रकार यहाँ षष्ठी हो जाती है तथा योगविभक्ति द्वितीय सूत्र से 'द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति होती ही है।

उदाहरण – दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा (गाँव के समीप दाहिनी ओर)– यहाँ एनप् प्रत्ययान्त दक्षिण शब्द के कारण ग्राम शब्द में द्वितीया व षष्ठी विभक्ति हुई है।

इसी प्रकार 'उत्तरेण ग्रामं ग्रामस्य वा' भी निष्पन्न होता है।

सूत्र – दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् 2/3/34

वृत्ति – एतैर्योगे षष्ठी स्यात्पंचमी च। दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा।

अर्थ एवं व्याख्या – यहाँ 'दूरान्तिकार्थैः' तृतीयान्त पद; 'षष्ठी' प्रथमान्त पद है तथा 'अन्यतरस्याम्' यह विभक्तिप्रतिरूपक अव्यय है। इस प्रकार यह त्रिपदात्मक सूत्र है। यहाँ 'अन्तिक' का तात्पर्य समीप है। इस सूत्र में 'अपादाने पंचमी सूत्र से 'पंचमी' पद की अनुवृत्ति होती है। इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है दूरवाची तथा समीपवाची शब्दों के योग में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में पंचमी विभक्ति भी होती है।

उदाहरण – दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा (गाँव से दूर तथा समीप) यहाँ दूर शब्द तथा समीपवाची निकट शब्द के योग के कारण ग्राम शब्द में षष्ठी तथा पंचमी विभक्ति हुई है।

सूत्र – ज्ञोऽविदर्थस्य करणे 2/3/51

वृत्ति – जानातेरज्ञानार्थस्य करणे शेषत्वेन विवक्षते षष्ठी स्यात्। सर्पिषो ज्ञानम्

अर्थ एवं व्याख्या – यहाँ विद अर्थो यस्य स विदर्थ, न विदर्थः इति अविदर्थः तस्य अविदर्थस्य। प्रकृत सूत्र में 'ज्ञः' यह षष्ठ्यन्त पद है, 'अविदर्थस्य' यह भी षष्ठ्यन्त पद है, 'करणे' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह त्रिपदात्मक सूत्र है। 'षष्ठी शेषे' से यहाँ 'शेषे' पद की अनुवृत्ति होती है। इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है जो ज्ञानार्थक नहीं है, ऐसी ज्ञा धातु के करण में शेषत्व की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण – सर्पिषो ज्ञानम् (घी के कारण होने वाली प्रवृत्ति)– यहाँ ज्ञा धातु ज्ञानार्थक न होकर प्रवृत्ति अर्थ में है और प्रवृत्ति का कारण सर्पिस् है। उसकी करणत्वेन विवक्षा न करके शेषत्वेन विवक्षा करने पर प्रकृत सूत्र से सर्पिस् शब्द में षष्ठी होकर सर्पिषः बनता है।

सूत्र – अधीगर्थदयेशां कर्मणि 2/3/52

वृत्ति – एषां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात्। मातुः स्मरणम् सर्पिषो दयनम्, ईशनं वा।

अर्थ एवं व्याख्या – 'अधीगर्थदयेशाम्' षष्ठ्यन्त पद, 'कर्मणि' सप्त्म्यन्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र द्विपदात्मक है। यहाँ 'षष्ठी शेषे' सूत्र की अनुवृत्ति आती है। सूत्रस्थ 'अधीगर्थ' शब्द का अर्थ है– 'अधि' पूर्वक इक् धातु की समानार्थक धातु अधि पूर्वक इक् धातु 'स्मरण करना' अर्थ में प्रयुक्त है। अतः स्मरणार्थक धातुओं का भी ग्रहण होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि अधि पूर्वक इक् धातु की समानार्थक धातु, दय् तथा ईश् धातुओं का जो कर्म है उसमें शेषत्व की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण – मातुः स्मरणम् (माता का स्मरण करना), सर्पिषो दयनम् (घी का दान, रक्षण), सर्पिष् ईशनम् (घी का स्वामी होना)। इन उदाहरणों में क्रमशः स्मरणार्थक स्मृ धातु के कर्म मातृ शब्द में, दय् धातु के कर्म सर्पिस् शब्द में तथा ईश् धातु के कर्म–सर्पिस् शब्द में शेषत्व की विवक्षा करने पर षष्ठी विभक्ति होती है।

सूत्र – कृञः प्रतियत्ने 2/3/53

वृत्ति – प्रतियत्नो गुणाधानम्। कृञः कर्मणि शेषे षष्ठी स्याद् गुणाधाने।

अर्थ एवं व्याख्या – इस सूत्र में प्रतियत्न का तात्पर्य गुणाधान से है। अर्थात् किसी नवीन गुण को धारण करना अथवा किसी गुण को दूसरे रूप में बदलना प्रतियत्न कहलाता है। 'कृञः' षष्ठ्यन्त पद तथा 'प्रतियत्ने' सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र द्विपदात्मक है। 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' सूत्र से 'कर्मणि' पद की अनुवृत्ति होती है। इस प्रकार प्रतियत्न गम्यमान हो तो कृञ् धातु के कर्म में शेषत्व की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण – एधोदकस्योपस्कुरुते (लकड़ी आदि ईंधन का गुण उष्णत्व जल में उत्पन्न करना) यहाँ पर गुधाधान गम्यमान होने के कारण कर्म उदक (जल शब्द में शेषत्व की विवक्षा करने पर षष्ठी विभक्ति होती है।

सूत्र – रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः 2/3/54

वृत्ति – भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रूजार्थानां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात्। चौरस्य रोगस्य रूजा।

अर्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'रूजार्थानां' तथा 'भाववचनानाम्' यह दोनों षष्ठ्यन्त पद हैं। 'अज्वरेः' भी षष्ठ्यन्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र त्रिपदात्मक है। 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' सूत्र से 'कर्मणि' पद की अनुवृत्ति होती है। इस सूत्र में 'भाववचन' का अर्थ है – वह धातु जिसका भाव धात्वर्थ ही वचनकर्ता हो। रूजा का अर्थ है व्याधि और 'रूजार्थानाम्' का अर्थ हुआ व्याधिवाचक धातुओं का। अतः व्याधिवाची धातुओं के कर्म में शेषत्व की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है, यदि उन धातुओं का कर्ता धात्वर्थ को कहने वाले घञ् आदि प्रत्ययान्त शब्द हों, परन्तु ज्वर् धातु के कर्म में षष्ठी नहीं होती है।

उदाहरण – चौरस्य रोगस्य रूजा (रोगकर्तृक चोर सम्बन्धी पीड़ा) यहाँ पर रोग शब्द व्याधि–रूजा का कर्ता है, अतः भावकर्तृक होने के कारण रूज् के कर्म चोर में शेषत्व की

विवक्षा करने पर प्रकृत सूत्र से षष्ठी होकर चौरस्य बनता है। रोगस्य में 'षष्ठी शेषे' सूत्र से षष्ठी होती है।

वार्तिक – अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम्

वृत्ति – रोगस्य चौरज्वरः चौरसन्तापो वा। रोगकर्तृकं चौरसम्बन्धि ज्वरादिकमित्यर्थः।

अर्थ एवं व्याख्या – व्याधिवाची भावकर्तृक धातुओं के कर्म में शेषत्व की विवक्षा में षष्ठी होती है परन्तु ज्वर तथा सन्तापि धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है। सन्तापि में सम् उपसर्गपूर्वक तप् धातु से विच् प्रत्यय हुआ है।

उदाहरण – रोगस्य चौरज्वरः चौरसन्तापों वा (रोगकर्तृक चोर सम्बन्धी ज्वर/सन्ताप) यहाँ प्रकृत वार्तिक के द्वारा प्रतिपदविधाना शेष षष्ठी का निषेध हो जाने के कारण क्रमशः चौर शब्द में 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी हो जाती है। उक्त षष्ठी के प्रतिपदविधान न होने के कारण समास का निषेध नहीं होता। अतः 'चौरस्य ज्वरः' तथा 'चौरस्य सन्तापः' में समास होकर चौरज्वपरः तथा चौरसन्तापः रूप बनते हैं।

सूत्र – आशिषि नाथः 2/3/55

वृत्ति – आशीरर्थस्य नाथतेः शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात्। सर्पिषो नाथनम्। आशिषि इति किम्? माणवकनाथनम्। तत्सम्बन्धिनी याच्ञेत्यर्थः। अर्थ एवं व्याख्या– प्रकृत सूत्र में 'आशिषि' सप्तम्यन्त पद तथा 'नाथः' षष्ठ्यन्त पद है। इस प्रकार यह त्रिपदात्मक सूत्र है। यहाँ 'षष्ठी शेषे' तथा 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' सूत्र से 'कर्मणि' पद की अनुवृत्ति होती है। आशीर्वाद अर्थ में विद्यमान नाथ् धातु के कर्म में शेषत्व की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण– सर्पिषो नाथनम् (घृत सम्बन्धी इच्छा का आशीर्वाद) यहाँ पर आशीर्वाद अर्थ की कामना में नाथ् धातु के कर्म सर्पिस् में शेषत्व की विवक्षा होने पर प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति हुई है।

यहाँ पर शंका होती है कि इस सूत्र में 'आशिषि' पद के ग्रहण का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान यह है कि आशीर्वाद अर्थ गम्यमान रहते ही नाथ् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति हो तथा जहाँ पर आशीवार्द अर्थ नहीं है वहाँ पर षष्ठी न हो। जैसे–माणवकनाथनम् (बालक सम्बन्धी याचना) में आशीर्वाद न होकर याचना अर्थ है। अतः यहाँ प्रकृत सूत्र से षष्ठी न होकर 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी होती है तथा माणवकस्य नाथनम् में समास होकर माणवकनाथनम् प्रयोग बनता है।

सूत्र – जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् 2/3/56

वृत्ति – हिंसार्थनामेषां शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात्। चौरस्योज्जासनम् नित्रौ संहतौ विपर्यस्तौ व्यस्तौ वा। चौरस्य निप्रहणनम्–प्रणिहननम् निहननम्–प्रहणनं वा। नट अवस्कन्दने चुरादिः। चौरस्योन्नाटकम्। चौरस्य क्राथनम्, वृषलस्य पेषणम्। हिंसायाम् किम्? धानापेषणम्।

अर्थ एवं व्याख्या– प्रकृत सूत्र में 'जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषाम्' यह षष्ठ्यन्त पद है, 'हिंसायाम्' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह द्विपदात्मक सूत्र है। 'षष्ठी शेषे' तथा 'कर्मणि' की अनुवृत्ति होती है। इस सूत्र में दिवादिगणीय 'जसू माक्षणे' सूत्र में हिंसा ग्रहण के सामर्थ्य से। धातु का ग्रहण नहीं होता है यहाँ नृत्त नृतौ धातु का भी ग्रहण न होकर चौरादिक नट–अवस्कन्दने धातु का ग्रहण होता है।

सूत्र में निप्रहण का प्रयोग किया गया है। उसमें नि व त्र उपसर्गपूर्वक हन् धातु है। नि और प्र उपसर्गों में 'निप प्र' इस समुदाय का तो ग्रहण होता ही है साथ ही इनका व्युत्क्रम होकर 'प्रनि' के रूप में भी ग्रहण होता है तथा नि का अलग और प्र का अलग भी ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि हिंसा अर्थ में विद्यमान जास्, नि + प्र + हन् नाट्, क्राथ और पिष् धातुओं के कर्म में शेषत्वेन विवक्षा करने पर षष्ठी होती है।

उदाहरण – चौरस्य उज्जासनम् (चोर को पीटना)

चौरस्य निप्रहणनं प्रणिहननं प्रहणनं वा (चोर को पीटा)

चौरस्य उन्नाट्नम् (चोर को पीटना)

चौरस्य क्राथनम् (चोर को पीटना)

वृषलस्य पेषणम् (वृषल को मारना)

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः हिंसार्थ जसि धातु के प्र, नि पूर्वक हन् धातु के, नाहि धातु के, क्राथ धातु के कर्म चौर शब्द में ता पिष् धातु के कर्म वृषल शब्द में शेषत्व की विवक्षा करने पर प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

यहाँ पर शंका होती है कि इस सूत्र में 'हिंसायाम्' पद के ग्रहण का क्या प्रयोजन है। इसका समाधान है कि हिंसा अर्थ में ही विद्यमान जासि आदि धातुओं के कर्म में षष्ठी हो, किन्तु अपवादस्वरूप हिंसा अर्थ न होने पर प्रकृत सूत्र से षष्ठी न हो, जैसे 'धानपेषणम्' (भुने हुए धान्य को पीसना) यहाँ हिंसा अर्थ न होने के कारण प्रकृत सूत्र से षष्ठी नहीं हुई है।

सूत्र – व्यवहृपणोः समर्थयोः 2/3/57

वृत्ति – शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात्। सूते क्रयविक्रयत्यवहारे चानयोस्तुल्यार्थता। शतस्य व्यवहरणं पणनं वा। समर्थयोः किम्। शलाकाव्यवहार। गणनेत्यर्थः। ब्राह्मणपणनं। स्तुतिरित्यर्थः।

अर्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'व्यवहृपणोः' षष्ठी द्विवचनान्त पद है तथा 'समर्थयोः' षष्ठ्यन्त पद है। इस प्रकार यह द्विपदात्मक सूत्र है। 'षष्ठी शेषे' तथा 'कर्मणि' की अनुवृत्ति होती है। सूत्रोक्त समर्थ पद का अर्थ 'तुल्यार्थता' है। सूत्र में पठित 'हृ' धातु तथा 'पण्' धातु (जुआ खेलने) अर्थ में तथा क्रय–विक्रय अर्थ में तुल्यार्थक हो जाती है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि समान अर्थवाली वि–अव पूर्वक हृ धातु तथा पण् धातु के कर्म में शेषत्व की विवक्षा करने पर षष्ठी होती है।

उदाहरण – शतस्य व्यवहरणं पणनं वा (सौ रूपए का क्रय–विक्रय करना या जुआ खेलना) – यहाँ पर क्रमशः वि, अव, हृ धातु तथा पण् धातु के कर्म शत शब्द में शेषत्वेन विवक्षा होने के कारण प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

यहाँ पर शंका होती है कि प्रकृत सूत्र में 'समर्थयोः' इस पद का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि द्यूत तथा क्रय विक्रय व्यवहार में तुल्यार्थक वि अव पूर्वक हृ धातु तथा पण् धातु के कर्म में षष्ठी हो और उक्त तुल्यार्थकता न होने पर षष्ठी न हो। अतः 'शलाकाव्यवहारः' (सलाही की गिनती) में उक्त तुल्यार्थकता न होने के कारण प्रकृत सूत्र से षष्ठी नहीं होती हैं इसी प्रकार ब्राह्मणपणनम्' (बाह्मण की स्तुति) में भी तुल्यार्थता न होने के कारण षष्ठी नहीं हुई।

सूत्र – दिवस्तदर्थस्य 2/3/58

वृत्ति – द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिनः कर्मणि षष्ठी स्यात्। शतस्य दीव्यति। तदर्थस्य किम्? ब्राह्मण दीव्यति। स्तौतीत्यर्थः।

अर्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'दिवः' तथा 'तदर्थस्य' ये दोनो षष्ठ्यन्त पद हैं। 'षष्ठी शेषे' तथा कर्मणि की अनुवृत्ति होती है। यहाँ पर तदर्थ शब्द का तात्पर्य है कि पूर्वोक्त 'व्यवहृपणोः समर्थयोः' सूत्र में पठित तुल्यार्थक वि+अव पूर्वक हृ धातु तथा पण् धातु के अर्थ वाली धातु। इस प्रकार पूजार्थ निष्पन्न होता है कि द्यूतार्थक एवं क्रय विक्रय रूप व्यवहारार्थ दिव् धातु के कर्म में षष्ठी होती है।

उदाहरण – शतस्य दीव्यति (सौ रूपये का क्रय विक्रय या जुआ खेलता है।) यहाँ पर दिव् धातु के कर्म शत शब्द में प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

यहाँ शंका होती है कि प्रकृत सूत्र में 'तदर्थस्य' इस पद का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि दिव् धातु के क्रय विक्रय रूप व्यवहार या द्यूत अर्थ होने पर ही कर्म में षष्ठी हो, अन्य अर्थों में प्रयुक्त दिव् धातु के कर्म में षष्ठी न हो। अतः 'ब्राह्मणं दीव्यति' (ब्राह्मण की स्तुति करता है) में स्तुति अर्थ में प्रयुक्त दिव् धातु के योग में षष्ठी नहीं हुई अपितु "कर्मणि द्वितीया" से द्वितीया होती है।

सूत्र– विभाषोपसर्गे 2/3/59

वृत्ति – पूर्वयोगापवादः। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'विभाषा' यह प्रथमान्त पद है तथा 'उपसर्गे' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र द्विपदात्मक है। पूर्वसूत्र 'दिवस्तदर्थस्य' की अनुवृत्ति आती है। तथा यह सूत्र पूर्व सूत्र का अपवाद भी है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि उपसर्गयुक्त व्यवहारार्थक दिव् धातु के कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है।

उदाहरण – शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति (सौ रूपये का दाँव लगाता है) यहाँ प्रति उपसर्ग पूर्वक 'वि' धातु है अतः पूर्व सूत्र से नित्य प्राप्त षष्ठी को बाधकर कर्म शत शब्द में प्रकृत सूत्र से विकल्प से षष्ठी होने पर शतस्य प्रतिदीव्यति बनता है तथा षष्ठी न होने के पक्ष में 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया होकर शतं प्रतिदीव्यति बनता है।

सूत्र – प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने 2/3/61

वृत्ति – देवतासम्प्रदानकेऽर्थे वर्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणो हविषो वाचकाच्छब्दात् षष्ठी स्यात्। अग्नये .... हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रस्तुत सूत्र में 'प्रेष्यब्रुवोः' षष्ठी द्विवचनान्त पद है, 'हविषः' यह षष्ठी एकवचनान्त पद है; देवतासम्प्रदाने' यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र त्रिपदात्मक है। 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी की अनुवृत्ति तो आती है किन्तु व्याख्यानात् शेषे की अनुवृत्ति नहीं मानी जाती। 'कर्मणि' की अनुवृत्ति यथावत् है। सूत्र में प्रयुक्त हविष् शब्द स्परूपपरक न होकर अर्थपरक है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि यदि देवता को समर्पण अर्थ हो तो प्रेष्य– प्र ूर्वक इस धातु तथा ब्रू धातु के हविष्यवाची कर्म में षष्ठी होती है।

उदाहरण – अग्नये ..... हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा (अग्निदेवता के लिये हाग की वपा और मेदस् रूप हवि को प्रकट करो समर्पित करो)। यहाँ पर हवि जिसे दी जा रही है वह अग्निरूप देवता ही हैं। अतः देवतासम्प्रदान है। हविष्, वपा, मेदस ये तीनों हविष् वाचक शब्द हैं। ये तीनों क्रमशः प्रेष्य तथा अनुब्रूहि के कर्म होने के कारण प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति हुई है।

सूत्र – कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे 2/3/64

वृत्ति – कृत्वोऽर्थानां प्रयोगे कालवाचिन्यधिकरणे शेषे षष्ठी स्यात्। पंचकृत्वोऽह्नो भोजनम्। द्विरह्नो भोजनम्। शेषे किम्? द्विरह्नन्यध्ययनम्।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'कृत्वोऽर्थप्रयोगे', 'काले', तथा 'अधिकरणे' तीनों सप्तम्यन्त पद हैं। इस प्रकार यह सूत्र त्रिपदात्मक है। 'षष्ठी शेषे' की अविकल अनुवृत्ति हो रही है। सूत्र में कृत्वस् के द्वारा क्रत्वखुच् प्रत्यय का ग्रहण है। कृत्वोऽर्थक का आशय है– कृत्वसुच् प्रत्यय और तदर्थक प्रत्यय। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि कृत्वसुच् तथा तदर्थक प्रययों से निष्पन्न शब्द के प्रयोग में कालवाची अधिकरण में शेषत्व की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होनी है। उदाहरण– पंचकृत्वोऽह्ने भोजनम् (दिन में पांच बार भोजन) यहाँ कृत्वसुच् प्रत्ययान्त पंचकृत्वः के योग में कालवाचक अहन् शब्द में अधिकरण में प्राप्त सप्तमी को बाधकर प्रकृत सूत्र से षष्ठी होकर अह्नः बनता है। इसी प्रकार द्विरहनो भोजनम् (दिन में दो बार भोजन) भी सिद्ध होगा।

यहाँ शंका होती है कि सूत्र में शेषे पद की अनुवृत्ति का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि प्रकृत सूत्र में शेषे का सम्बन्ध होने के कारण जहाँ शेषत्वेन विवक्षा नहीं है, वहाँ षष्ठी नहीं होती। द्विरहन्यध्ययनम् में अधिकरण की विवक्षा होने के कारणे शेष विवक्षा हीं है अतः शब्द में षष्ठी होकर सप्तमी हुई है।

सूत्र – कर्तृकर्मणोः कृति 2/3/65

वृत्ति – कृद्योगे कर्तृरि कर्मणि च षष्ठी स्यात्। कृष्णस्य कृतिः। जगतः कर्ता कृष्णः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में कतृकर्मणोः यह षष्ठ्यन्त पद है तथा 'कृति' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह द्विपदात्मक सूत्र है। 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी की अनुवृत्ति आती है तथा 'अनभिहिते' का अधिकार है। यहाँ पर 'कृत' पद से कृत्प्रत्ययान्त का ग्रहण है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि कृत, प्रत्ययान्त शब्द का योग होने पर अनभिहित कर्ता तथा कर्म में षष्ठी होती है।

उदाहरण – कृष्णस्य कृतिः (कृष्ण की रचना), जगतः कर्ता कृष्णः (संसार के कर्ता कृष्ण हैं।) यहाँ पर क्रमशः कृत्प्रत्ययान्त कृतिः तथा कर्ता शब्दों के योग में क्रमशः अनभिहित कर्ता तथा कर्म कृष्ण शब्द में प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति होकर कृष्णस्य बनता है।

वार्तिक – गुणकर्मणि वेष्यते (वा. 5042)

वृत्ति – नेता अश्वस्य स्रुहनस्य स्रुहनं वा। कृति किम्? तद्धिते मा भूत्, कृतपूर्वी कटम्।

वार्तिकार्थ एवं व्याख्या – गौण कर्म में यथा प्राप्त षष्ठी विकल्प से होती है। प्रधानकर्म और गौणकर्म उभयज 'कतृकर्मणोः कृति' से नित्य षष्ठी प्राप्त होने पर प्रकृत वार्तिक से गौणकर्म में विकल्प से षष्ठी होती है। प्रधानकर्म में तो 'कर्तृकर्मणोः कृति' से ही षष्ठी होती है।

उदाहरण – नेता अश्वस्य स्रुहनस्य स्रुहनं वा (घोडे को स्रुहन देश ले जाने वाला) यहाँ पर नेता शब्द कृत्प्रययान्त है। यहाँ अश्व प्रधान कर्म और स्रुहन अप्रधानकर्म है। 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से प्रधानकर्म अश्व शब्द में तो नित्य षष्ठी हुई है किन्तु अप्रधान कर्म स्रुहन में 'गुणकर्मणि वेष्यते' वार्तिक से विकल्प से षष्ठी होने के कारण स्रुहन में षष्ठी होकर स्रुहनस्य बनता है और षष्ठी न होने के पक्ष में 'अकथितं च' से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया होने परे स्रुहनम् बनता है।

यहाँ शंका होती है कि 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र में 'कृति' इस पद का क्या प्रयोजन है। इस प्रश्न का समाधान है कि यदि सूत्र में 'कृति' पद नहीं होता तो तद्धित प्रत्यय के स्थल 'कृतपूर्वी कटम्' यहाँ पर भी इस सूत्र से षष्ठी हो कर 'कटस्य' यह अनिष्ट रूप बनने लगता। यह अनिष्ट रूप की प्रसक्ति न हो इसलिये सूत्र में 'कृति' पद ग्रहण करने की आवश्यकता है।

सूत्र – उभयप्राप्तौ कर्मणि 2/3/66

वृत्ति – उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात्। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'उभयप्राप्तो' तथा 'कर्मणि' ये दोनों सप्तम्यन्त पद हैं। इस प्रकार यह द्विपदात्मक सूत्र है। 'अनभिहिते' का अधिकार है। 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी तथा पूर्वसूत्र से 'कृति' की अनुवृत्ति आती है। सूत्रस्थ 'उभयप्राप्तौ' पद का अर्थ है कर्ता, कर्म दोनों में प्राप्त होने पर। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि किस कृदन्त के योग में कर्ता तथा कर्म दोनों में एक साथ षष्ठी प्राप्त हो, वहाँ अनभिहित कर्म में ही षष्ठी होती है कर्ता में नहीं।

उदाहरण – आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन (जो ग्वाला नहीं है, उससे गायों का दुहा जाना आश्चर्य की बात है।) यहाँ 'दोहो' पद घञ्–प्रत्ययान्त होने के कारण कृदन्त प्रयोग है। दोहन कार्य का कर्ता 'अगोप' है तथा कर्म 'गो' है। पूर्वसूत्र 'कर्तृकर्मणोः कृति' से कर्ता अगोप तथा कर्म 'गो' शब्द दोनों में युगपत् षष्ठी प्राप्त होने पर प्रकृत सूत्र से कर्म गो शब्द में षष्ठी का विधान किया जाता है।

वार्त्तिक – **स्त्रीप्रत्यययोऽकाकारयोर्नायं नियमः** (वा. 1513)

वृत्ति – भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य, जगतः

वार्त्तिकार्थ – अक तथा अ अन्त वाला जो स्त्रीत्व में होने वाला प्रत्यय, तदन्त शब्द के प्रयोग में 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' सूत्र का नियम प्रवृत्त नहीं होता है। वार्तिक से निषेध हो जाने के कारण स्त्रीत्व विशिष्ट कृदन्त शब्द के योग में अनुक्त कर्ता तथा कर्म दोनों में षष्ठी ही होती है।

उदाहरण – भेदिका विभित्सा या रूद्रस्य जगतः (रूद्र के द्वारा जगत का विनाश/विनाश की इच्छा) यहाँ पर 'कर्तृकर्मणोः कृति' से कर्ता तथा कर्म दोनों में षष्ठी की प्राप्ति होती है। प्रकृत वार्तिक से कर्म में षष्ठी का निषेध होने के कारण कर्ता रूद्र तथा कर्म जगत् में युगपत् षष्ठी ही होती है।

वार्त्तिक – **शेषे विभाषा** (वा. 1513)

वृत्ति – स्त्रीप्रत्यय इत्येके। विचित्रा जगतः कृतिहरेर्हरिणा वा। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति। शब्दानामनुशासनमाचार्ये आचार्यस्य वा।

वार्तिकार्थ एवं व्याख्या – यहाँ शेष शब्द के द्वारा अक् तथा अकार से भिन्न प्रत्ययों का ग्रहण होता है। पूर्ववार्तिक से स्त्रीलिग्ङयोः' पद का अनुवर्तन होता है। अतः वार्तिकार्थ निष्पन्न होता है कि अक् तथा अ प्रत्ययों से भिन्न प्रत्ययान्त शब्दों के योग में विकल्प से षष्ठी होती है। यहाँ कुछ आचार्यों का मत है कि यह विकल्प 'स्त्रियाम्' सूत्र के अधिकार में विहित कृत्प्रत्ययान्त के योग में ही होना चाहिये।

उदाहरण – विचित्रा जगतः कृतिर्हरेः हरिणा वा (हरि के द्वारा की गयी इस जगत् की रचना विचित्र है।) यहाँ पर प्रकृत वार्तिक के द्वारा कर्ता हरि शब्द में विकल्प से षष्ठी होने पर 'हरेः'

बनता है और षष्ठी न होने के पक्ष में 'कर्तकरणयोस्तृतीया' से अनुक्त कर्ता में तृतीया होकर हरिणा बनता है।

यहाँ पर कुछ आचार्यों का मत है कि केवल स्त्रीप्रत्ययान्त के साथ ही नहीं अपितु सामान्यतः सभी अक्, अ से भिन्न कृत्–प्रत्ययान्त शब्द के योग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है। जैसे शब्दानाम् अनुशासनम् आचार्येण आचार्यस्य वा (आचार्य के द्वारा शब्दों का अनुशासन) यहाँ केवल स्त्री प्रत्यय में नहीं अपितु सामान्यतया सभी कृत्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी होती है, इस मत के आधार पर नपुंसकलिंग 'अनुशासनम्' इस कृत्प्रत्ययान्त शब्द के योग में भी कर्त्ता आचार्य शब्द में शेषे विभाषा' वार्त्तिक के द्वारा विकल्प से षष्ठी होती है।

सूत्र – क्तस्य च वर्तमाने 2/3/67

वृत्ति – वर्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। 'न लोक–' इति निषेधस्यापवादः। राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'क्तस्य' यह षष्ठ्यन्त पद है, 'च' यह अव्यय है तथा 'वर्तमाने' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह त्रिपदात्मक सूत्र है। 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी की अनुवृत्ति आती है और 'अनभिहिते' का अधिकार है। यह सूत्र 'न लोकाव्ययनिष्ठाखल...' इस सूत्र का अपवाद है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है वर्तमान काल अर्थ में विहित 'क्त' प्रत्यय के प्रयोग में अनुक्त कर्ता एवं कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण– राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा (राजा के द्वारा मानित/पूजित) यहाँ पर 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र के द्वारा कर्ता में षष्ठी प्राप्त होने पर निष्ठाप्रत्ययान्त के योग में 'न लोकाव्ययनिष्ठा. ...' से उक्त षष्ठी का निषेध प्राप्त था, उसको भी बाधकर प्रकृत सूत्र से कर्ता राजन् शब्द में षष्ठी होकर राज्ञाम् बना है।

सूत्र – अधिकरणवाचिनश्च 2/3/68

वृति – क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। इदमेषामासितं शचितं गतं भुक्तं वा।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'अधिकरणवाचिनः' यह षष्ठ्यन्त पद है तथा 'च' यह अव्यय है। इस प्रकार यह सूत्र द्विपदात्मक है। यहाँ 'क्तस्य च वर्तमाने' से क्तस्य तथा 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी की अनुवृत्ति आती है। यहाँ अधिकरण अर्थ में 'क्तोऽधिकरणे च ध्राव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः' सूत्र से विहित क्त प्रत्यय का ग्रहण होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है – अधिकरणवाची क्तप्रत्ययान्त शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण – इदमेषामासितं शपितं गतं भुक्तं वा (यह इनका बैठा हुआ/शयन किया हुआ/गया हुआ स्थान/भोजनपात्र है।) यहाँ पर 'कर्तृकमणोः कृति' से कर्ता इदम् शब्द में षष्ठी प्राप्त होने पर निष्ठाश्रित न लोकाव्ययनिष्ठाखल्...' से प्राप्त निषेध को बांधकर प्रकृत सूत्र से षष्ठी होने पर एषाम् बनता है।

सूत्र – न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (2/3/69)

वृत्ति – एषां प्रयोगे षष्ठी न स्यात्/लादेशः–कुर्वन कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः। उ–हरिं दिदृक्षुः, अलंकरिष्णुर्वा। उक–दैत्यान्घातुको हरिः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'न' यह अव्यय पद है तथा 'लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' यह षष्ठ्यन्त पद है। इस प्रकार यह द्विपदात्मक सूत्र है। षष्ठी शेषे' से षष्ठी की अनुवृत्ति आती है। यहाँ पर 'ल' के द्वारा लट् आदि लकारों का ग्रहण होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि ल, उ, उक, अव्यय, निष्ठा खलर्थ तथा तृन्–इन कृत्प्रययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्ता व कर्म में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है।

उदाहरण – कुर्वन, कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः (सृष्टि को करते हुए हरि) यहाँ कुर्वन और कुर्वाणः इन लडादेश प्रत्ययान्त शब्दों के योग में 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से कर्म संज्ञक सृष्टि शब्द में प्राप्त षष्ठी का प्रकृत सूत्र से निषेध होने के कारण द्वितीया होकर सृष्टितम बनता है।

इसी प्रकार विभिन्न प्रत्ययों के अधोलिखित उदाहरण बनते हैं –

उ– हरिं दिदृक्षुः, अलंकरिष्णुर्वा (हरि को देखने व अलंकृत करने का इच्छुक)

उक– दैत्यान्घातुको हरिः (दैत्यों को मारने वाला हरि)

वार्त्तिक – कमेरनिषेधः (वा. 1519)

वार्त्तिकार्थ – कम् धातु से उक् प्रत्यय होने पर उसके योग में षष्ठी का निषेध नहीं होता।

उदाहरण – लक्ष्म्याः कामुको हरि (हरि लक्ष्मी के इच्छुक हैं)

यहाँ 'उक' प्रत्ययान्त कामुक शब्द के योग में 'कर्तृकर्मणोः कृति' से कर्म संज्ञक लक्ष्मी शब्द में प्राप्त षष्ठी का 'न लोकाव्ययः' से निषेध प्राप्त था, उसका प्रकृत वार्त्तिक से निषेध हुआ है। फलतः षष्ठी हो जाने से लक्ष्म्याः बनता है।

अव्यय – जगत्सृष्ट्वा (जगत् की सृष्टि करके हरि उसके अन्दर प्रविष्ट हैं)

सुखं कर्तुम् (सुख करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं।)

निष्ठा– विष्णुना हता दैत्याः (विष्णु के द्वारा दैत्य मारे गये)

दैत्यान् हतवान् विष्णुः (विष्णु ने दैत्यों को मारा)

खलर्थ– ईषत्करः प्रपंचो हरिणा (हरि के लिये संसार की रचना करना सरल है।)

विशेष– सूत्रार्थ तृन शब्द से केवल तृन् इसी प्रत्यय मात्र का ग्रहण नहीं होता अपितु तृन् प्रत्याहार का ग्रहण होता है। तृन् प्रत्याहार 'लटः शतृशानचाव...' सूत्र को शतृ शब्द के 'तृ' शब्द से लेकर 'तृन्' सूत्र के नकार तक जितने प्रत्यय किये जाते हैं, उन सभी प्रत्ययों का 'तृन् प्रत्याहार के द्वारा ग्रहण होता है। इन प्रत्ययों के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

शानन्– सोमं पवमानः (सोम को पवित्र करता है।)

चानश्– आत्मानं मण्डयमानः (अपने को सजाता हुआ)

शत्– वेदमधीयन् (वेद का अध्ययन करता हुआ)

तृन्– कर्ता लोकान् (संसार को रचने के स्वभाव वाला)

वार्त्तिक – द्विषः शतुर्वा (वा. 1522)

वार्त्तिकार्थ – द्विष धातु के शतृप्रत्यान्त शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति का निषेध विकल्प से होता है।

उदाहरण– मुरस्य मुरं वा द्विषम् (मुर नामक राक्षस का शत्रु)

यहाँ द्विषन् शब्द के योग में प्राप्त षष्ठी का 'न लोकाव्यय...' से निषेध प्राप्त था उसका प्रकृत वार्त्तिक से विकल्प से निषेध न होने के पक्ष में षष्ठी होकर 'मुरस्य द्विषन्' बनता है और निषेध होने के पक्ष में द्वितीया होकर 'मुरं द्विषन्' बनता है।

विशेष– 'न लोकाव्यय...' सूत्र के द्वारा जो षष्ठी का निषेध हुआ, वह 'कर्तृकर्मणोः कृति' से प्राप्त कारक षष्ठी का ही निषेध है, 'षष्ठी शेषे' से शेष षष्ठी हो होती ही है जैसे–ब्राह्मणस्य कुर्वन्– (ब्राह्मण को बनाते हुए हरि)

नटकस्य विष्णुः– (नटकासुर को जीतने वाला) – इन उदाहरणों में क्रमशः 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी होकर ब्राह्मणस्य तथा नटकस्य बनता है।

सूत्र – अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः 2/3/70

वृत्ति – भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थिनश्च योगे षष्ठी न स्यात्/सतः पालकोऽवतरति/व्रजंगामी/शतंदायी।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'अकेनोः' तथा 'भविष्यदाधमर्ण्ययोः' ये दोनों षष्ठ्यन्त पद हैं। 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी तथा 'न लोकाव्ययनिष्ठ...' से न की अनुवृत्ति आती है। यहाँ आधमर्ण्य का अर्थ है– कर्जदार। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है–भविष्यत् काल में विहित अक प्रत्ययान्त और भविष्यत् तथा आधमर्ण्य अर्थ में विहित इन प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है।

उदाहरण – सतः पालकोऽवतरति (सज्जनों का पालन करने वाला अवतार लेता है), व्रजंगामी (भविष्य में व्रज को जाने वाला), शतंदायी (सौ रूपये देने का कर्जदार) यहाँ पर 'कतृंकर्मणोः कृति' से क्रमशः सत्/व्रज/शत में प्राप्त षष्ठी का प्रकृत सूत्र से निषेध होने के कारण 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया होकर क्रमशः सतः/व्रजम्/शतम्/रूप बनते हैं।

सूत्र – कृत्यानां कर्तरि वा 2/3/71

वृत्ति – षष्ठी वा स्यात्। मया मम वा सेव्यो हरिः। कर्तरि इति किम्? गेयो माणवकः साम्नाम्। 'भव्यगेय–'इति कर्तरि यद्विधानादनभिहितं कर्म। अज योगो विभज्यते–कृत्यानाम्। 'उभयप्राप्तौ' इति 'न' इति चानुवर्तते। तेन नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन। ततः 'कर्तरि वा'। उक्तोऽर्थः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में कृत्यानाम्' यह षष्ठ्यन्त पद है; 'कर्तरि' यह सप्तम्यन्त पद है, 'वा' यह अव्यय है। इस प्रकार यह सूत्र त्रिपदात्मक है। 'अनभिहिते का अधिकार है तथा 'षष्ठी' की अनुवृत्ति होती है। 'कर्तृकर्मणोः कृति' से नित्य प्राप्त षष्ठी का इस सूत्र के द्वारा विकल्प से विधान होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है– कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है।

उदाहरण – मया मम वा सेव्यो हरिः (मेरे द्वारा हरि सेव्य हैं) यहाँ पर अनुक्त कर्ता अस्मद् शब्द में 'कर्तृकर्मणोः कृति से नित्य से षष्ठी की प्राप्ति होने पर उसको बाध कर प्रकृत सूत्र से विकल्प से षष्ठी होने पर 'मम' प्रयोग बनता है। तथा षष्ठी के अभाव पक्ष में अनुक्त कर्ता में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया होकर 'मया' बनता है।

यहाँ पर शंका होती है कि प्रकृत सूत्र में 'कर्तरि' पद का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि "गेयो माणवकः साम्नाम्" (बालक सामवेद का गान कर रहा है।) में सामरूप कर्म में वैकल्पिक वैकल्पिक षष्ठी न होकर नित्य से षष्ठी हो। यही सूत्रस्थ 'कर्तरि' पद का प्रयोजन है। कर्तरि पद के पाठ से कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में ही विकल्प से षष्ठी का विधान करने के फलस्वरूप "गेयो माणवकः साम्नाम्" में यत् प्रत्यय के 'भव्यगेयप्रवचनीयोयस्थानीय... ' सूत्र से कर्तृवाच्य होने के कारण कर्म अनुक्त है।

आचार्य ने इसका औचित्य बताने के लिए प्रकृत सूत्र का योग विभाग किया है। तदनुसार प्रथम सूत्र (कृत्यानाम) तथा दूसरा सूत्र (कर्तरि) होगा। प्रथम सूत्र कृत्यानाम में 'उभयप्राप्तौकर्मणि' से उभयप्राप्तौ की तथा 'न लोकाव्ययनिष्ठााखलर्थतृनाम्' से न की अनुवृत्ति होती है। इस तरह प्रथम सूत्र का अर्थ होगा– यदि कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी की प्राप्ति हो तो कृत्य प्रत्ययान्त शब्द के योग में षष्ठी का निषेध होता है। योग विभाग करके उपर्युक्त अर्थ करने पर नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन में कृत्य प्रत्ययान्त नेतव्या के प्रयोग में कर्ता कृष्ण शब्द तथा कर्म गो शब्द में उभयत्र षष्ठी प्राप्त होने पर योग विभक्त सूत्र 'कृत्यानाम' से उभयत्र षष्ठी का निषेध हो जाने से कर्म में द्वितीया तथा कर्त्ता में तृतीया होकर 'नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन' बनता है।

योग विभक्त द्वितीय सूत्र है 'कर्त्तरि वा'। इस सूत्र में कृत्यानाम की अनुवृत्ति भी होती है। इस सूत्र के द्वारा 'मया मम वा सेव्यो हरिः' यह प्रयोग सिद्ध होता है। जिसका व्याख्यान पूर्व में किया जा चुका है।

सूत्र – तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् 2/3/72

वृत्तिः – तुल्यार्थै र्योगे तृतीया वास्यात्, पक्षे षष्ठी। तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा। अतुलोपमाभ्याम् किम्? तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'तुल्यार्थैः' यह तृतीययान्त पद है, 'अतुलोपमाभ्याम्' यह तृतीया विभक्ति का द्विवचनान्त पद है। 'तृतीया' यह प्रथमान्त पद है। अन्यतरस्याम् यह विभक्तिप्रतिरूपमक अव्यय है। इस प्रकार यह सूत्र बहुपदात्मक है। 'षष्ठी शेषे' की अनुवृत्ति होती है। षष्ठी के प्रकरण में तृतीया के विकल्प का विधान करना यह सिद्ध करता है कि

तृतीया न होने के पक्ष में षष्ठी ही होती है। यद्यपि 'तुल्यार्थैः' की जगह 'तुल्यैः' इतना मात्र पाठ होने पर बहुवचन सामर्थ्य से तुल्यार्थक शब्दों का ग्रहण हो जाता, अर्थ– ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं थी, तथापि दूसरे पदों के बिना भी जहाँ तुल्यता का ज्ञान हो, वहीं तृतीया हो इस बात का ज्ञापन करने के लिए अर्थ–शब्द का योग किया गया है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पक्ष होता है कि– तुला और उपमा शब्दों से भिन्न तुल्य अर्थ वाले शब्दों के योग में शेषत्व की विवक्षा में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है। पक्ष में षष्ठी होती है।

उदाहरण – तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा। (कृष्ण के तुल्य) यहाँ तुल्यार्थक तुल्य शब्द उपपद में है। उसके योग में कृष्ण शब्द में 'षष्ठी शेषे' सूत्र से सम्बन्ध सामान्य में नित्य षष्ठी प्राप्त होने पर उसे बाधकर प्रकृत सूत्र से विकल्प से तृतीया होने पर कृष्णेन तथा तृतीया न होने पर षष्ठी विभक्ति होकर कृष्णस्य प्रयोग बनते हैं।

यहाँ शंका होती है की प्रकृत सूत्र में 'अतुलोपमाभ्याम्' इस पद का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि तुला और उपमा शब्दों को छोड़कर तुल्यार्थक शब्दों के योग में विकल्प से तृतीया हो किन्तु यदि तुला और उपमा शब्दों का ही योग हो तो तृतीया न हो। अतः कृष्णस्य तुला नास्ति (कृष्ण की किसी से समानता नहीं है) और कृष्णस्य उपमा नास्ति (कृष्ण की किसी से उपमा नहीं है) में साक्षात् तुला और उपमा शब्दों का योग होने के कारण तृतीया नहीं होती अपितु केवल 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी होकर कृष्णस्य बन जाता है।

सूत्र – चतुर्थी चाशिष्यायुष्यभद्रकुशलसुखार्थहितैः 2/3/73

वृत्ति – एतदर्थैर्योगे चतुर्थी स्यात् पक्षे षष्ठी। आयुष्यं चिरंजीवित कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्। एवं मद्रं भद्रं कुशल निरामयं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हित पथ्यं वा भूयात्। आशिषि किम्? देवदत्तस्यायुष्यमस्ति। व्याख्यानात् सर्वत्रार्थग्रहणम्। मद्रभद्रयोः पर्यायत्वादन्यतरो न पठनीयः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्याः – प्रकृत सूत्र में 'चतुर्थी' यह प्रथमान्त पद, 'य' अव्यय, 'आशिषि' यह सप्तम्यन्त पद तथा 'आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितः' यह तृतीयान्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र बहु–पदात्मक है। यहाँ पूर्वसूत्र से 'अन्यतरस्याम् पद की अनुवृत्ति होती है तथा 'षष्ठी शेषे' की अनुवृत्ति होती है। आचार्यो के व्याख्यान के अनुरोध से सूत्रोक्त आयुष्य आदि शब्दों का स्वरूप ग्रहण तो है ही अर्थग्रहण भी होता है। अतः मद्र, भद्र शब्दों में से सूत्र में एक शब्द नहीं पढ़ना चाहिये, क्योंकि अर्थग्रहण के कारण एक शब्द से दूसरे शब्द का ग्रहण हो जाता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि आशीर्वाद अर्ध गम्यमान होने पर आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ हित शब्दों और इनके अर्थ वाले शब्दों के योग में शेषत्व की विवक्षा में विकल्प से चतुर्थी होती है। पक्ष में षष्ठी होती है।

उदाहरण – आयुष्य चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्। (कृष्ण आयुष्मान् हों)– यहाँ आशीर्वाद अर्थ गम्य है तथा आयुष्य शब्द का योग भी है। अतः प्रकृत सूत्र से विकल्प से चतुथी होने पर कृष्णाय बनता है। चतुर्थी के अभाव पक्ष में 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी होकर कृष्णस्य बनता है।

इसी प्रकार मद्रं (कल्याण) भद्रं (कल्याण) कुशल, निटामचं, सुखं, शम्, अर्थः, प्रयोजन, हितं, पथ्यं वा कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् प्रयोग सिद्ध होंगे।

यहाँ शंका होती है कि प्रकृत सूत्र में 'आशिषि' इस पद का प्रयोजन क्या है? इसका समाधान है कि आशीर्वाद देना अर्थ गम्य होने पर ही इन शब्दों के योग में चतुर्थी हो अन्यथा न हो। अतः 'देवदत्तस्य आयुष्यम् अस्ति' (देवदत्त आयुष्मान है) इस वाक्य में आयुष्य शब्द के होते हुए भी आशीर्वाद अर्थ गम्य नहीं है, अपितु आयुष्य है, इतना मात्र बोध होता है और यह तथ्य–कथन मात्र है। अतः यहाँ चतुर्थी न होकर षष्ठी होती है। यहां षष्ठी विधायक सूत्र प्रकरण संपन्न होता है।

10.3 सप्तमी विभक्ति के सूत्र, अर्थ एवं पद–विश्लेषण

सूत्र – आधारोऽधिकरणम् 1/4/45

वृत्ति – कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञः स्यात्।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में आधार यह प्रथमान्त पद है तथा 'अधिकरणम्' यह भी प्रथमान्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र द्विपदात्मक है। यहाँ पर 'कारके' का अधिकार है। इस सूत्र में 'अधिकरण' संज्ञा है तथा 'आधार' संज्ञी है। क्रिया साक्षात् किसी आधार में नहीं रहती किन्तु कर्ता या कर्म के द्वारा रहती है। अतः इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि कर्ता कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का आधार जो कारक वह अधिकरण संज्ञक होता है।

सूत्र – सप्तम्यधिकरणे च 2/3/36

वृत्ति – अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकारात् दूरान्तिकार्थेभ्यः। ऑपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा। कटे आस्ते। (स्थाल्यां पचति। मोदे इच्छास्ति। वनस्य दूरे अन्तिके वा। 'दूरान्तिकार्थेभ्यः–' इति विभक्तित्रयेण सह चतस्रोऽत्र विभक्तयःफलिताः।

सूत्रार्थ एंव व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'सप्तमी' यह प्रथमान्त पद है तथा 'अधिकरणे' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र द्विपदात्मक सूत्र है। यहाँ 'च' शब्द से 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' से 'दूरान्तिकार्थेभ्यः' का अनुकर्षण किया जाता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है तथा 'च' शब्द से दूर और समीप वाचक शब्दों में भी सप्तमी विभक्ति होती है।

औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापक के भेद से आधार तीन प्रकार का होता है।

उदाहरण– कटे आस्ते (चटाई पर बैठा हूँ।) यहाँ पर कट (चटाई) का बैठने वाले के साथ संयोग सम्बन्ध है, अतः यहाँ औपश्लेषिक आधार है। इसलिये 'कट' शब्द की अधिकरण संज्ञा होकर प्रकृत सूत्र से सप्तमी होती है।

इसी प्रकार स्थाल्यां पचति प्रयोग होता है।

मोक्षे इच्छाऽस्ति (मोक्ष विषयक इच्छा) सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति (सभी में आत्मा है।) क्रमशः ये दोनों उदाहरण वैषयिक तथा अभिव्यापक आधार के हैं। यहाँ पर अधिकरण संज्ञा होकर सप्तमी होती है।

वनस्य दूरे अन्तिके वा (वन से दूर तक समीप) यहाँ पर 'सप्तम्यधिकरणे च' सूत्र में चकार ग्रहण के सामर्थ्य से दूर वाची तथा समीप वाची शब्दों में भी सप्तमी होकर 'दूरे' तथा 'अन्तिके' प्रयोग बनता है।

'दूरान्तिकार्थेभ्य द्वितीया च' से दूरवाची तथा समीपवाची शब्दों में द्वितीया, पंचमी व षष्ठी इन तीन विभक्तियों का विधान हो चुका है और प्रकृत सूत्र से सप्तमी का भी विधान किये जाने से दूर तथा समीप वाचक शब्दों में कुल द्वितीय, पंचमी, षष्ठी व सप्तमी चार विभक्तियां होती हैं।

वार्तिक – क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वा. 1485)

वृत्ति – अधीती व्याकरणे। अधितमनेनेति विग्रहे 'इष्टादिभ्यश्च' इति कर्तरीतिः।

वार्तिकार्थ – क्त प्रत्ययान्त शब्द यदि इन् प्रत्यय का भी विषय बनता हो तो उसके कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है। उदाहरण– अधीती व्याकरणे। (जिसने व्याकरण पढ़ लिया है) यहाँ अधि–पूर्वक इङ् धातु से 'क्त' प्रत्यय होने पर अधीत शब्द बना है तथा इसका पाठ इष्ठादिगण में है। फलतः 'अधीतम् अनेन' इस अर्थ में अधीत शब्द से 'इष्टादिभ्यश्च' सूत्र के द्वारा इनि प्रत्यय होकर अधीनित् बनता है। इसके प्रथमा एकवचन में अधीती प्रयोग बनता है। इसका कर्म व्याकरण है अतः प्रकृत वार्तिक से सप्तमी विभक्ति होकर व्याकरणे यह प्रयोग बनता है।

वार्तिक – 'साध्वसाधुप्रयोगे च' (वा. 1486)

वृति – साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले।

वार्तिकार्थ – साधु तथा असाधु शब्दों के योग में जिस पर साधुता अथवा असाधुता का प्रदर्शन होता है उसमें सप्तमी विभक्ति है।

उदाहरण – साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले। (कृष्ण माता के लिए साधु है तथा मामा के लिए असाधु है) यहाँ पर क्रमशः साधु तथा असाधु शब्दों के प्रयोग के कारण क्रमशः मात् तथा मातुल शब्द में प्रकृत वार्तिक से सप्तमी विभक्ति होती है।

वार्तिक – 'निमित्तात् कर्मयोगे' (वा. 1490)

वृत्ति – निमित्तामिहफलम् 'योगः' संयोगसमवायात्मकः।

'चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुंजरम्।

केशेषु चमरी हन्ति सीम्नि पुष्फलको हतः।।

हेतु तृतीयान्न प्राप्ता। सीमा अण्डकोशः। पुष्फलको गन्धमृगः। योगविशेषे किम्? वेतनेन धान्यं लुनाति।

वार्तिकार्थ – जिस निमित्त से कोई क्रिया की जाती है उस निमित्त से युक्त यदि क्रिया का कर्म हो तो निमित्तवाची शब्द में सप्तमी विभक्ति होती है। प्रकृत वार्तिक में निमित्त का तात्पर्य फल है तथा योग का अभिप्राय संयोग व समवाय सम्बन्ध से है।

उदाहरण – चर्मणि द्वीपिन्न हन्ति (चमड़े के लिए बाघ को मारता है), इस वाक्य में चर्मन् शब्द फल है क्योंकि उसी के लिए बाघ का हनन हो रहा है। चर्म का द्वीपि के साथ समवाय सम्बन्ध है। अतः निमित्तवाचक चर्मन् शब्द में प्रकृत वार्तिक से सप्तमी विभक्ति होकर चर्मणि प्रयोग बनता है।

दन्तयोर्हन्ति कुंजरम् (दाँतों के लिए हाथी को मारता है)

केशेषु चमरीं हन्ति (बालों के लिए चमरी (गाय) का मारता है)

सीम्निपुष्कलको हतः (अण्डकोश के लिए मृग मारा गया)

उपर्युक्त उदाहरणों में भी प्रकृत वार्तिक से सप्तमी होकर क्रमशः दन्तयो, केशेषु, सीम्नि प्रयोग सिद्ध होते है। उपर्युक्त उदाहरणों में 'हेतौ' सूत्र से तृतीयाविभक्ति प्राप्त थी उसको बाधकर इस वार्तिक के द्वारा सप्तमी का विधान किया जाता है। प्रस्तुत उदाहरणों में सीमन् शब्द का अर्थ अण्डकोश है, गन्ध वाले मृग को पुष्पकलक कहा जाता है।

यहाँ आशंका होती है कि प्रकृत वार्तिक में 'योगे' इस पद का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि निमित्तात कर्मयोगे में योग शब्द की विशेषतया ग्रहण करके उसका विशेष अर्थ लिया गया है– संयोग या समवाय सम्बन्ध रूपी योग। इस तरह विशेषार्थक योग शब्द के ग्रहण का फल यह है कि योगविशेष होना आवश्यक है अर्थात् फलवाचक शब्द का कर्म के साथ संयोग या समवाय सम्बन्ध होना आवश्यक है, अतः वेतनेन धान्य लुनाति (वेतन के लिए धान्य काटता है) में वेतन और धान्य का संयोग या समवाय सम्बन्ध न होने से वेतन शब्द में सप्तमी नहीं हुयी अपितु हेतौ सूत्र से तृतीया–वेतनेन धान्य लुनाति वाक्य बन जाता है।

सूत्र – यस्य च भावेन भावलक्षणम् 2/3/37

वृत्ति – यस्य क्रियया क्रियान्तर लक्ष्यते ततः सप्तमीस्यात्। गोषु दुह्यमानासु गतः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'यस्य' यह षष्ठयन्त पद है, 'च' यह अव्यय है, भावेन तृतीयान्त पद है। 'भावलक्षणम्' प्रथमात पद है। इस प्रकार यह सूत्र बहुपदात्मक है। 'सप्तम्यधिकरणे च' से सप्तमी की अनुवृत्ति आती है। यहाँ पर भाव शब्द से क्रिया का ग्रहण

होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि जिसकी क्रिया से कोई अन्य क्रिया सूचित होती हो तो उससे सप्तमी विभक्ति होती है

उदाहरण – गोषु दुह्यमानासु गतः (जब गायें दुही जा रही थी तब गया), यहाँ पर दोहन क्रिया के द्वारा गमन क्रिया सूचित हो रही है। अतः प्रकृत सूत्र से सप्तमी विभक्ति होती है।

वार्तिक – अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च (वा. 1487–1488)।

वृत्ति – सत्सु तरत्सु असन्त आसते। असत्सु तिष्टत्सुसन्तस्तरन्ति सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति। असत्सु तरत्सु सन्तास्तिष्ठन्तिा।

वार्तिकार्थ – योग्य का कर्तृत्व बतलाने में तथा अयोग्य का अकर्तृत्व बतलाने में या इसकी विपरीत दशा में अर्थात् योग्य का अकर्तृत्व तथा अयोग्य का कर्तृत्व बतलाने में कर्त्ता और उससे अन्वित क्रिया में सप्तमी विभक्ति होती है।

उदाहरण – सत्सुं तरत्सु असन्त आसते (सज्जनों के तरते हुये असज्जन रह जाते है) यहाँ पर कर्त्ता है सज्जनवाची सत्शब्द और तरने के लिये योग्य भी है। सत् (सज्जन) तथा न तरने के कर्त्ता हैं असत् (असज्जन) है। अतः तरणक्रिया के कर्ता सत् और आसन्–क्रिया के कर्ता असत् है। यहाँ अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये' च वार्तिक मे सप्तमी होकर सत्सु तरत्सु बन जाता है। आसते क्रिया के कर्ता असत् में प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमां विभक्ति होती है– असन्त आसते। इस तरह वाक्य पूरा बना– सत्सु तरत्सु असन्त आसते। इसी प्रकार असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति (असज्जनों के रहते हुये सज्जन तर जाते हैं।) सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति (सज्जनों के रहते हुए असज्जन तर जाते हैं। असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति (असज्जनों के तरते हुए सज्जन रह जाते है।) ये सभी उदाहरण भी निष्पन्न होते हैं। जिनमें नीचे के दो उदाहरण तद्वैपरीत्य के द्योतक हैं।

सूत्र – षष्ठी चानादरे 2/3/38

वृत्ति – अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः।

रूदति रूदतो वा प्राव्राजीत् रूदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में षष्ठी यह प्रथमान्त पद है, 'अनादरे' यह सप्तम्यन्त पद है। 'च' यह अव्यय है। पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती है। 'सप्तम्यधिकरणे च' से सप्तमी की भी अनुवृत्ति होती है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि जिसमें किसी एक क्रिया से क्रियान्तर अभिलक्षित होता हो तो उसमें अनादर की अधिकता गम्यमान होने पर ज्ञापक क्रिया के आश्रय के रूप में उपस्थित शब्द में षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ पर्यायेण होती है।

उदाहरण – रूदति रूदतो वा प्राव्राजीत् (रोते हुए युज–पत्नी को छोड़कर संन्यास ले लिया) यहाँ रोदन क्रिया के द्वारा संन्यास लेने की क्रिया सूचित होती है और अनादर भी प्रकट होता है। अतः प्रकृत सूत्र से रूदत् शब्द में षष्ठी होने पर 'रूदतः' बनता है तथा सप्तमी होने पर 'रूदति' बनता है।

सूत्र – स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूऽसूतैश्च 2/3/39

वृत्ति – एतैः सप्तमिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। षष्ठ्यामेव प्राप्तायां पाक्षिकसप्तम्यर्थ वचनम्। गवां गोषु वा स्वामी। गवां गोषु वा प्रसूतः। गा एवानुभवितुं जात इत्यर्थः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूऽसूतैः' यह तृतीयान्त पद है, 'च' यह अत्यय पद है। यहाँ 'च' शब्द के द्वारा 'षष्ठी चानादरे' से षष्ठी की तथा 'सप्तम्यधिकरणे च' से सप्तमी इन दोनों पदों की अनुवृत्ति मानी जाती है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू और प्रसूत शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्तियां पर्यायेण होती हैं। वस्तुतः स्वामी आदि शब्दों के योग में सामान्य सम्बन्ध अर्थ में 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी स्वतः सिद्ध है, केवल पाक्षिक सप्तमी का विधान करने के लिये इस सूत्र की आवश्यकता है।

उदाहरण – गवां गोषु वा स्वामी (गायों का मालिक)। यहाँ पर स्वामी शब्द के योग में 'षष्ठी शेषे' को बाधकर प्रकृत सूत्र से षष्ठी तथा सप्तमी का विधान होकर 'गवां' व 'गोषु' प्रयोग बनते हैं।

इसी प्रकार 'गवां गोषु का प्रसूतः' (गौ सम्बन्धी अनुभव करने के लिये पैदा हुआ) प्रयोग भी सिद्ध होगा।

सूत्र – आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम 2/3/40

वृत्ति– आभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तस्तात्पर्येऽर्थे।

आयुक्तो व्यापारितः। आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा। आसेवायां किम्? आयुक्तो गौः शकटे। ईषद्युक्त इत्यर्थः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'आयुक्तकुशलाभ्याम्' यह तृतीयान्त पद है तथा 'च' यह अव्यय है। 'आसेवायां' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र त्रिपदात्मक है। यहाँ पर 'षष्ठिचानादरें' से षष्ठि की तथा 'सप्तम्याधिकरणे च' से सप्तमी की अनुवृत्ति होती है। इस सूत्र में आयुक्त शब्द का अर्थ है व्यापारित अर्थात् नियुक्त। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि – एक निष्ठता गम्यमान हो तो आयुक्त और कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ पर्यायेण होती है।

उदाहरण – आयुक्त कुशलों वा हरि पूजने पूजनस्य वा (हरि के पूजन में सम्यक् प्रकार से लगा हुआ/कुशल) यहाँ पर आयुक्त तथा कुशल शब्द के योग में क्रमशः सप्तमी तथा षष्ठी विभक्ति होकर – हरि पूजने एवं हरि पूजनस्य – ये दो रूप बनते है।

प्रकृत सूत्र में शंका होती है कि यहाँ पर आसेवायां इस पद का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि एकनिष्ठता गम्यमान होने पर ही आयुक्त और कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ हो अन्यथा केवल सप्तमी हो। जैसे– आयुक्तो गौः शकटे। (लकड़ी

की गाड़ी में थोड़ा जुता हुआ बैल) इस वाक्य में थोड़ा जुतना अर्थ है न कि एकनिष्ठता अतः षष्ठी सप्तमी दोनों का विधान न होकर आधार अर्थ में केवल सप्तमी का विधान होता है।

सूत्र – यतश्च निर्धारणम् 2/3/41

वृत्ति – जातिगुण क्रिया सज्जाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठिसप्तम्यौ सतः। नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'यतः' यह अव्यय पद है। 'च' यह भी अव्यय पद है। निर्धारणम्' यह प्रथमान्त पद है। इस प्रकार यह त्रिपदात्मक सूत्र है। सप्तमी तथा षष्ठी की अनुवृत्ति पूर्ववत आती है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि जाति, गुण, क्रिया, संज्ञा के द्वारा समुदाय के एक भाग का पृथक्करण होना ही निर्धारण कहलाता है और यह जिससे निर्धारण होता है उस समुदायात्मक शब्द से षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ पर्यायेण होती है।

उदाहरण – नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः। (मनुष्यों में द्विज श्रेष्ठ है)

यहाँ पर मनुष्य जाति रूप समुदाय से द्विज को श्रेष्ठत्व के लिए छांटा जा रहा है। अतः मनुष्यत्व जाति से द्विज का निर्धारण सिद्ध हुआ। अतः प्रकृत सूत्र के द्वारा जातिवाचक 'नृ' शब्द में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति होकर नृणां व नृषु रूप बनते है। इसी प्रकार अधोलिखित प्रयोग भी निष्पन्न होते है। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा (गायों में कृष्णा गौ अधिक दूध वाली है) गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः (चलने वालों में दौड़ने वाला शीघ्र है)। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः (छात्रों में मैत्र नामक छात्र चतुर है)

सूत्र – पंचमी विभक्ते 2/3/42

वृत्ति – विभागों विभक्तम्। निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एवं तत्र पंचमी स्यात्। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'पंचमी' यह प्रथमान्तं पद है। 'विभक्तेः' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र द्विपदात्मक है। यहाँ पर पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति होती है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि जहाँ दो विभिन्न वस्तुओं में से किसी एक का निर्धारण हो वहाँ अवधीभूत शब्द में पंचमी विभक्ति होती है। यहाँ पर विभक्त का तात्पर्य विभाग से है।

उदाहरण – माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः (मथुरावासी पाटलिपुत्रवासियों से अधिक धनी हैं) यहाँ पर विभाग के रूप में निर्धारण है। माथुर निधार्यमाण है तथा पाटलिपुत्रक निर्धारणावधी है। अतः दोनों भिन्न–भिन्न है। इसलिए प्रकृत सूत्र से पाटलिपुत्रक शब्द में पंचमी होकर पाटलिपुत्रकेभ्यः बनता है।

सूत्र – साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः 2/3/143

वृत्ति – आभ्यां योगे सप्तमी स्यादर्चायाम्, न तु प्रतेः प्रयोगे।

मातरि साधुर्निपुणो वा। अर्चायां किम्? निपुणो राज्ञो भृत्यः। इह तत्त्वकथने तात्पर्यम्।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में साधुनिपुणाभ्याम् यह तृतीयान्त, 'अर्चायाम्' यह सप्तम्यन्त, 'सप्तमी' यह प्रथमान्त तथा 'अप्रतेः' यह षष्ठ्यन्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र बहुपदात्मक है। यहाँ पर 'अर्चायाम्' पद के द्वारा सम्मान अर्थ द्योतित होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि सत्कार सम्मान, पूजा आदि अर्थ गम्यमान हो तो साधु और निपुण शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है, परन्तु प्रति शब्द के योग में नहीं होती।

उदाहरण – मातरि साधुनिर्पुणो वा (माता के प्रति सज्जन और निपुण)

यहाँ पर साधु 'शब्द के योग में माता के प्रति सम्मानगम्य होने के कारण मातृ शब्द में सप्तमी विभक्ति होकर 'मातरि' बनता है।

प्रकृत सूत्र में शंका होती है कि यहाँ पर 'अर्चायाम्' इस पद का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि सत्कार गम्य रहते ही सप्तमी हो, अन्यथा नहीं। अतः निपुणो राज्ञो भृत्यः (राजा का सेवक निपुण हो) यहाँ सत्कार अर्थ की प्रधानता ना होकर तत्त्वकथन में ही तात्पर्य है इसलिये सप्तमी नहीं होती।

वार्तिक – अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् (वा. 1493)

वृति – साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति परि अनु वा।

वार्त्तिकार्थ – सत्कार अर्थ गम्यमान हो तो साधु तथा निपुण शब्दों के योग में सप्तमी होती है, परन्तु प्रति आदि शब्दों के प्रयोग में नहीं होती है।

उदाहरण – साधुर्निपुणों वा मातरं प्रति परि अनु वा (माता के प्रति सम्मान भाव तथा सेवा में कुशल) यहाँ पर साधुनिपुणाभ्याम्...' सूत्र से सप्तमी की प्राप्ति है लेकिन प्रकृत वार्तिक से उसका निषेध हो जाता है। निषेध होने पर द्वितीया होती है।

सूत्र – प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च 2/3/44

वृत्ति – आभ्यां योगे तृतीया स्यात् चात् सप्तमी।

प्रसित उत्सुको हरिणा हरौ वा।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'प्रसितोत्सुकाभ्याम्' यह तृतीयान्त तथा 'तृतीया' यह प्रथमान्त पद है। 'च' यह अव्यय पद है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि प्रसित और उत्सुक इन शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी विभक्तियां पर्यायेण होती हैं।

उदाहरण – प्रसित उत्सुको हरिणा हरौ वा (हरि के लिये आसक्त/तत्पर)

यहाँ पर क्रमशः प्रसित तथा उत्सुक शब्दों के योग में हरि में पर्यायेण तृतीया तथा सप्तमी विभक्ति होकर हरिणा और हरौ बनता है।

सूत्र – नक्षत्रे च लुपि 2/3/45

वृत्तिः – नक्षत्रे प्रकृत्यर्थे यो लुप्संज्ञया लुप्यमानस्य प्रत्ययस्यार्थस्तत्र वर्तमानात् तृतीयासप्तम्यौ स्तोऽधिकरणे। 'मूलेनावाहयेद्देवीं' श्रवणेन विसर्जयेत्।' मूले श्रवणे इति वा। लुपि किम्? पुष्ये शनिः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'नक्षत्रे' तथा 'लुपि' यह दोनों सप्तम्पन्त पद हैं, 'च' यह अव्यय है। पूर्व सूत्र से 'तृतीया' की तथा 'साधुनिपुणाभ्याम्...' सूत्र से सप्तमी की अनुवृत्ति आती है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि प्रकृतिभूत शब्द का अर्थ नक्षत्र हो तथा लुप् शब्द के द्वारा प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्ययार्थ विद्यमान हो तो उस नक्षत्रवाची शब्द से अधिकरण अर्ध में तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ पर्यायेण होती हैं।

उदाहरण – मूलेनावाहयेद् देवी श्रवणेन विसर्जयेत् (मूल नक्षत्र से युक्त काल में देवी का आवाहन करें और श्रवण नक्षत्र से युक्त काल में देवी का विसर्जन करें) यहाँ पर नक्षत्रवाची मूल शब्द से तद्धितीय अण् प्रत्यय होकर उसका 'लुकविशेषे' सूत्र से लुप् होकर मूल शब्द ही बना है। अतः प्रकृत सूत्र से मूल और श्रवण शब्द से तृतीया तथा सप्तमी विकर्षित होकर मूलेन/मूले एवं श्रवणेन/श्रवणे बनता है।

प्रकृत सूत्र में शंका होती है कि यहाँ 'लुपि' इस पद का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान है कि शब्द से विहित प्रत्यय का लोप होने पर ही नक्षत्रवाची शब्द से तृतीया और सप्तमी होती है; अन्यथा नहीं। अतः पुष्ये शनिः (पुष्प नक्षत्र में शनि है) यहाँ काल अर्थ में अण् ही नहीं हुआ है तो उसके लुप् का भी प्रसंग नहीं है। अतः पुष्प शब्द में तृतीया नहीं होती अपितु अधिकरण में सप्तमी होती है।

सूत्र – सप्तमीपंचम्यौ कारकमध्ये 2/3/7

वृत्ति – शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वानां ताभ्यामेते सतः। अद्य भुक्तवायं द्वयहे द्वयहाद्वा भोक्ता। कर्तृशक्त्योर्मध्येऽयं कालः। इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्। कर्तृकर्मशक्त्योर्मध्येऽयं देशः। अधिकशब्देन योगे सप्तमीपंचम्याविष्येते 'तदस्मिन्नधिकम्–' इति 'यस्मादधिकम्–' इति च सूत्रनिर्देशात्। लोके लोकाद्वा अधिको हरिः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'सप्तमीपंचम्यौ' यह प्रथमान्त पद है तथा 'कारकमध्ये' यह सप्तम्यन्त पद है। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से 'कालाध्वनोः' की अनुवृत्ति आती है। सूत्र में कारक शब्द का कर्तृत्व आदि शक्ति अर्थ लिया जाता है, केवल कर्ता के रूप में नहीं। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि दो शक्तियों के मध्य जो कालवाची और मार्गवाची शब्द होते हैं उनसे सप्तमी और पंचमी विभक्तियां होती है।

उदाहरण – अद्य भुक्त्वाऽयं द्वयहे द्वयहाद्वा भोक्ता (यह आज खाकर दो दिन बाद खायेगा) तथा यहाँ पर कर्ता और उसके भोजन की मध्यावधि ही काल का अवकाश है। यद्यपि भोजन करने वाला कर्ता एक ही है तथापि कालभेद से कर्तृशक्ति का भेद प्रतीत हो रहा है। इसलिये कर्त्ता की दो शक्तियों के मध्य प्रकृत सूत्र से द्वयह, शब्द से सप्तमी होने पर द्वयहे तथा पंचमी होने पर द्वयहाद् बनता है। यह कर्तृशक्ति के मध्य कालवाची का उदाहरण है।

इसी प्रकार इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत् (यहीं बैठे–बैठे एक कोस तक लक्ष्यभेद कर सकता है।) यह प्रयोग भी सिद्ध होगा। यहाँ कर्तृत्व शक्ति तथा कर्मत्व शक्ति के बीच का अध्ववाची देश ही अवकाश है।

सूत्रकार ने 'तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ता....:' सूत्र में अधिक शब्द के योग में सप्तमयन्त 'अस्मिन्' शब्द का प्रयोग किया है तथा 'यस्माद् अधिक यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी' सूत्र में अधिक शब्द के योग में पंचम्यन्त 'यस्मात्' का प्रयोग किया है। इन सूत्रों के निर्देश से यह विदित होता है कि अधिक शब्द के योग में सप्तमी व पंचमी विभक्तियां भी होती हैं। इसी के फलस्वरूप 'लोके लोकाद्वा अधिको हरिः' (हरि लोक से बढ़कर है)। इस वाक्य में अधिक शब्द के योग के कारण लोक शब्द में सप्तमी तथा पंचमी विभक्ति हुई है।

सूत्र – अधिरीश्वरे 1/4/97

वृत्ति – स्वस्वामिसम्बन्धेऽधिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञ' स्यात्।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'अधिः' यह प्रथमान्त तथा 'ईश्वरे' यह सप्तम्यन्त पद है। कर्मप्रवचनीयाः का अधिकार है। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि स्वस्वामिभाव सम्बन्ध में 'अधि' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

सूत्र – यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी 2/3/9

वृत्ति – अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी स्यात्। उप परार्धे हरेर्गुणाः परार्धादधिका इत्यर्थः। ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी। अधि भुवि रामः। अधि रामे भूः। 'सप्तमी शौण्डैः' इति समासपक्षे तु रामाधीना। 'अषडक्ष–' इत्यादिना खः।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – इस सूत्र में 'यस्मात्' पंचम्यन्त, 'अधिकम्' प्रथमान्त, 'यस्य' षष्ठ्यन्त, 'ईश्वरवचनम्', प्रथमान्त, 'तत्र' यह अव्यय 'सप्तमी' यह प्रथमान्त पद है। इस प्रकार यह सूत्र बहु पदात्मक है। 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' से कर्मप्रवचनीययुक्ते की अनुवृत्ति है। यहाँ पर ईश्वरवचन का अर्थ है– जिसका सामर्थ्य हो। इस प्रकार सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि जिससे अधिक हो और जिसका ईश्वरत्व कथन हो उस शब्द में सप्तमी विभक्ति होती है, कर्मप्रवचनीय के योग में। ऐश्वर्य कथन में स्व और स्वामी दोनों के वाचक शब्दों से पर्यायेण सप्तमी होती है।

उदाहरण – उपपरार्धे हरेर्गुणाः (हरि के गुण परार्ध संख्या से भी अधिक है) यहाँ अधिक अर्थ में उप शब्द की 'उपोऽधिके च' से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुयी है। अतः कर्मप्रवचनीय उप शब्द के योग में प्रकृत सूत्र से परार्ध शब्द में सप्तमी होकर परार्धे बनता हो।

इसी प्रकार अधि भुवि रामः। अधि रामे भूः (श्रीराम पृथ्वी के स्वामी है) प्रयोग भी सिद्ध होते हैं। यहाँ ऐश्वर्य अर्थ गम्य होने के कारण स्ववाचक 'भू' तथा स्वामी वाचक राम शब्द दोनों में सप्तमी होती है।

अधि शब्द का शौण्डादिगण में भी पाठ है। अतः 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से समास होने के पक्ष में 'रामाधीना भूः' ऐसा प्रयोग बनता है। 'रामाधीन' प्रयोग में 'अषडक्षाशितङ्...' सूत्र से 'ख' प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर 'आयनेयीनीयियः' सूत्र से ईन आदेश होता है। तथा स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् होने पर रामाधीना बनता है।

सूत्र – विभाषा कृञि 1/4/94

वृत्ति – अधिः करोतौ प्राक्संज्ञो वा स्यादीश्वरेऽर्थे।

यदत्र मामधिकरिष्यति। विनियोक्ष्यत इत्यर्थः। इह विनियोक्तुरीश्वरत्वं गम्यते। अगतित्वात् 'तिङि चोदात्तद्वति' इति निघातो न।

सूत्रार्थ एवं व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'विभाषा' यह प्रथमान्त तथा 'कृञि' यह सप्तम्यन्त पद है। इस प्रकार यह द्विपदात्मक सूत्र है। 'अधिरीश्वरे' सूत्र की अनुवृत्ति है तथा 'कर्मप्रवचनीयाः' का अधिकार है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है कि 'ईश्वर' अर्थ गम्यमान हो और वह कृ धातु से पूर्व हो तो स्वस्वामिभाव सम्बन्ध की प्रतीति होने पर 'अधि' शब्द की विकल्प से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

उदाहरण – यदत्र माम् अधिकरिष्यति (जो मुझे यहाँ नियुक्त करेगा)। नियोक्ता ईश्वर के रूप में गम्य होता है। यहाँ पर 'अधिरीश्वरे' सूत्र से अधि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है उसको बाध कर प्रकृत सूत्र से विकल्प से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। तथा 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' से अस्मद् शब्द में द्वितीया होकर 'माम्' प्रयोग बनता है। विकल्पाभाव पक्ष में अधिकरिष्यति क्रिया का कर्म होने के कारण भी 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया होकर 'माम्' ही बनता है। यहाँ कर्मप्रवचनीय के द्वारा गति संज्ञा का बाध होने के कारण 'तिङि चोदात्तद्वति' सूत्र से अधि को निघात (अनुदात्त) नहीं होता है।

10.4 सारांश

इस इकाई में आपने षष्ठी तथा सप्तमी विभाक्ति का अध्ययन किया। यहाँ पर आपने जाना कि षष्ठी विभक्ति स्वस्वामिभावादि सम्बन्धों को बताने के लिये है तथा अधिकरण अर्थात् आधार की विवक्षा में सप्तमी विभक्ति होती है। इसी के साथ आधार के तीन भेदों के बारे में भी आपने उदाहरण सहित जाना। इस इकाई में आपको इस बात का भी बोध हुआ की 'न लोकाव्ययनिष्ठा' सूत्र के द्वारा किन स्थलों पर षष्ठी विभक्ति का निषेध होता है। दूरवाची तथा समीपवाची शब्दों के योग में भी षष्ठी का विधान होता है; यह भी आपने इस अध्याय में पढ़ा। कर्ता अर्थ तथा कर्म अर्थ में विधीयमान षष्ठी विभक्ति का भी आपको ज्ञान हुआ। इस अध्याय में आपने भावलक्षण सप्तमी के बारे में भी अध्ययन किया। स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू, प्रसूत, आयुक्त, तथा कुशल शब्दों के योग में भी सप्तमी का विधान

किया गया है। कर्मप्रवचनीय संज्ञा के कारण होने वाली सप्तमी विभक्ति के बारे में भी आपने इस अध्याय में पढ़ा।

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्त कौमुदी (कोई भी संस्करण मूल एवं व्याख्या सहित)
2. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (प्रथम भाग), (बालमनोरमा। तत्वबोधिनी टीका सहित)
3. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (द्वितीय भाग), (हिन्दी व्याख्या सहित)
4. प्रौढ़मनोरमा (कारक प्रकरणम्)
5. वैयाकरणभूषणसार

10.6 अभ्यास प्रश्न

5. 'षष्ठी हेतु प्रयोगे' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. 'गोषु दुह्यमानसु गतः' उदाहरण को विभक्ति निर्देशपूर्वक समझाइए।
7. 'अधिरीश्वरे' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
8. 'माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः' उदाहरण को विभक्ति निर्देशपूर्वक समझाइए।